हलचल के पंख

रचयिता

मोहन अवस्थी

प्रकाशक
श्रीमती नीरजा अवस्थी
8/4, बैंक रोड
इलाहाबाद – 211002

वितरक :
सन्तोष प्रिन्टर्स
42/7, जवाहर लाल नेहरू रोड
इलाहाबाद – 211002
दूरभाष : 606393

मूल्य : सौ रुपये

HALCHAL KE PANKH (Anugit)
— by Mohan Awasthi

मुद्रक : सन्तोष प्रिन्टर्स, इलाहाबाद

हलचल के पंख

— अनुगीत संकलन —

हलचल के पंख (अनुगीत संकलन)

कवि : **मोहन अवस्थी**

डॉ० अवस्थी हिन्दी की विभिन्न विधाओं से सुपरिचित हैं। उन्होंने काव्य के विभिन्न शिल्पों का गहन अध्ययन किया है। 1962 में हिन्दी परिषद प्रकाशन, प्रयाग से प्रकाशित उनका शोध प्रबन्ध -आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प – इस बात की पुष्टि करता है।

'हलचल के पंख' की भूमिका के अंतर्गत उन्होंने अनुगीत के इतिहास पर जो विस्तृत चर्चा की है, उससे यह बात स्पष्ट रूप से उभर कर सामने आती है कि प्रतीकों के माध्यम से की गयी भावाभिव्यक्ति अधिक प्रभावोत्पादक होती है। उनके अनुगीतों में प्रस्तुत विभिन्न प्रतीक ही उनकी अलग पहचान प्रस्तुत करते हैं :

स्वप्न धुधुआते, सुलगती मौन कुंठा,
तीव्र इच्छा शुष्क मूर्च्छित थी पड़ी।
प्राण विद्युत ने सभी को स्पर्श करके,
जिंदगी को दीपमाला कर दिया।

हिन्दी काव्य प्रेमी प्रस्तुत अनुगीत संकलन का अवश्य स्वागत करेंगे।

– **डॉ० किशोरीलाल त्रिवेदी**

'नवनीत', जून 1996 पृष्ठ 127

हलचल के पंख डॉ० मोहन अवस्थी का 9वां कविता संग्रह है। इसमें 118 अनुगीत संकलित हैं। विस्तृत 'अपनी बात' में अनुगीत की व्याख्या की गयी है– अनुगीत की भाव-वस्तु उसकी अपनी है। अनुगीत की सुगम लय में यद्यपि वर्णिक छंदों के साथ फ़ारसी बहरों ने भी मिलकर अपना योग दिया है, परन्तु उसमें फ़ारसी बहरों का अनुकरण नहीं .... इन्हें पढ़कर यदि मनन करेंगे तो हर्ष-शोक, प्रसन्नता-पीड़ा, आह-वाह तथा सुख-दुःख आदि जो कुछ भी प्राप्त होगा, उसे आप अलग नहीं कर सकेंगे।

केदारनाथ कोमल

'कादम्बिनी',

फरवरी 1997 पृष्ठ 192

समर्पण

उस चेतना को
जो
कवि के हृदयाकाश में घुमड़-घुमड़कर
सहज कविता की
निराली वर्षा करती है

शुद्धि - पत्र

पृष्ठ संख्या	पंक्ति संख्या	अशुद्ध	शुद्ध
i	29	आधुनिक काव्य शिल्प	आधुनिक हिन्दी काव्य-शिल्प
ii	12	अतोद्रेक	आलोद्रेक
4	9	मिलन की	मिलन
17	6	मेहंदी	मेंहदी
24	10	प्रणिधान	प्राणिधान प्रणिधान
33	3	बेहतर	बेतरह
33	14	ही ज	ही बाज
36	5	यो	यों
62	20	कि पल भी	कि पुल भी
71	3	संमोग	संयोग
84	13	बु रा	बुरा
88	5	तुम्हारी गींद	तुम्हारी नींद
89	1	बारंबार बार	बारम्बार
98	6	फूल पत्ती	पत्ती है
114	10	पित्थी	पित्ती
120	9	एवं हिन्द	एवं हिन्दी

अपनी बात

आख़िरकार हितैषी काव्यानुरागियों की कल्याण कामनाएँ फलवती होकर रहीं और मेरे अनुगीतों का यह संग्रह 'हलचल के पंख' फड़फड़ाता हुआ आपके हाथों में पहुँच गया। 'धर्मयुग' में प्रकाशित मेरे एक अनुगीत[1] के बाद मुझे अनुगीत-प्रवर्त्तन का श्रेय तो दिया गया, परन्तु अनुगीत के साथ छपे अत्यल्प वक्तव्य ने कुछ भ्रान्ति भी फैला दी। इसलिए जिज्ञासुओं को यह बताना उचित प्रतीत होता है कि कविता के परम विशाल फलक पर 'अनुगीत' की स्थिति क्या है ?

कविता के स्वरूप पर आचार्यों, कवियों तथा समीक्षकों ने अपने-अपने ढंग से विचार किया है। लेकिन मेरी दृष्टि में कविता वस्तुतः लय-भाव-बिम्बित मनोरम वाणी है।[2] यों तो आज दलबद्ध आलोचकों की ज़ोर-ज़बरदस्ती के आधार पर किसी को भी कवि घोषित कर दिया जाता है, परन्तु यह एक साधारण तथ्य है कि यदि गद्य और पद्य दो भिन्न विधाएँ हैं तो उनकी पृथक्-पृथक् स्थिति सिद्ध करने वाले लक्षण भी होने चाहिए। गद्य से पद्य भिन्न है, इसका ज्ञान होता है लयाधार से। लयात्मकता पद्य का अनिवार्य गुण है। किन्तु हम हर पद्य को कविता नहीं कह सकते। पद्य और कविता में गुणात्मक भेद है। कविता में लय के साथ ही कई और विशेषताएँ होनी चाहिए।

शब्द एवं अर्थ का महत्त्व गद्य तथा कविता दोनों को स्वीकार है। गद्य में शब्द के अर्थ का मूल्य होता है, परन्तु कविता शब्दार्थ के साथ शब्द की लय को भी पकड़ती है और उस लय में छिपे अर्थ को श्रोता के मानस में प्रेषित करती है। शब्द-लय का यह अर्थ अनेक बिम्बों की सृष्टि करता है। शब्द में संपुटित अर्थ के अतिरिक्त उसकी लयार्थ-जन्य जो अन्तर्धारा कविता में रहती है वह गद्य में कहाँ ? इसी अन्तर्धारा का दूसरा नाम है मनोरमता। इस मनोरमता के क्रोड़ में स्थित पद्य ही कविता संज्ञा से विभूषित होता है।

कविता शब्द-साधना की चरमावस्था है। जिस प्रकार योग की अन्तिम स्थिति प्राप्त हो जाने पर पुरुष कर्म न करता हुआ भी कर्म करता है एवं

---

१ धर्मयुग, १८ मई, १९७५

२ मोहन अवस्थी ; आधुनिक काव्य शिल्प ; प्रकाशक : हिन्दी परिषद् प्रकाशन, प्रयाग, सन् १९६२, पृष्ठ ३३

करने पर भी नहीं करता, उसी प्रकार शब्द-साधना की पराकाष्ठा पर स्थित कवि लिखने पर भी कुछ नहीं लिखता और न लिखने पर भी सब कुछ लिखता है। अतः काव्य-सर्जना को अकर्म दशा मानना चाहिए। परन्तु अधूरी साधना दोष-मुक्त नहीं हो सकती। हृदय जब तक परिपक्व नहीं होता तब तक रचनाकार को वाग्वर्चस्वता नहीं मिलती। आकुलता जब कुछ काल तक हृदय में थाम ली जाती है तब वह सघन बनकर अपने वेग से वाणी को यथेच्छया लय-विनिवेशित करने में सफल होती है।

लय एक सार्वजनीन तत्त्व है। उसे देशकालानुसार अभिव्यक्ति देने में मनुष्य की वाणी अपना चमत्कार दिखाती है। लय की ऊर्मियाँ और आवर्त अनेकविध हैं। इनके कारण वह अनगिनत रूप धारण कर सकती है। लेकिन सरल वर्गीकरण के लिहाज़ से लय का एक रूप वह है जब उसका स्फूर्त स्रोत भवोद्रेक के कारण स्वतः फूटता है। लोकगीतों में मानव-मन के सुख-दुख इन्हीं लयों में अभिव्यक्त हुए हैं। इस लय को 'सहज लय' कह सकते हैं।

दूसरी लय वह है जिसकी लहरियाँ शास्त्रीय राग-रागिनियों में बाँध दी जाती हैं। लय का यह रूप भक्तिकालीन गीतों में देखने को मिलता है। यह संगीतात्मक लय है।

इन दो प्रकारों से पृथक् एक रूप वह है जिसमें लय बहती नहीं, प्रत्युत कदम रखती हुई चलती है। कबित्त-सवैयों में इसे देख सकते हैं। यह गतिबद्ध लय है।

सहजता की ओर अधिक झुकी हुई लय जब शास्त्रीयता या गतिमत्ता का थोड़ा सहारा लेती है तो वह 'सुगम लय' बन जाती है। अनुगीतों मे इसी सुगम लय का प्रयोग हुआ है।

फ़ारसी बह्रों में लिखे पद्य को अनाड़ी लोग झट ग़ज़ल नाम दे डालते हैं। उन्हें नहीं मालूम कि किसी छंद को ग़ज़ल नहीं कहते। ग़ज़ल, फ़ारसी बह्रों की परम्परा में लिखी एक विशेष भूमि पर एक विशेष भाव-सम्बन्धी रचना होती है। अनुगीत की भाव-वस्तु उसकी अपनी है। अनुगीत की सुगम लय में यद्यपि मात्रिक छंदों, वर्णिक छन्दों के साथ फ़ारसी बह्रों ने भी मिलकर अपना योग दिया है, परन्तु उसमें फ़ारसी बह्रों का अंधानुकरण नहीं है। साम्याभास से भ्रमित ग़ज़लाग्रही सज्जन निम्नांकित उदाहरण में कृपया देखें कि अनुगीत की उर्वरा भूमि में प्रवाहित हिन्दी-लय फ़ारसी बह्र को किस प्रकार अन्तर्भुक्त कर लेती है। 'पीयूषवर्ष' हिन्दी कविता का एक प्रसिद्ध छंद है--

यह सकल संसार सपने तूल है
साँच नाहीं मीत भारी भूल है

मैंने इस छन्द में एक 'लघु' और बढ़ाया अर्थात् अन्त के लघु-गुरु (IS) की जगह, लघु गुरु-लघु (ISI) रक्खा; तो अनुगीत का उत्थान यों हुआ—

रत्नकण हमने बिखेरे बार-बार
ले गये भरकर लुटेरे बार-बार[1]

इस बीस मात्रिक छंद में ण, म, र आदि सभी वर्ण स्वरान्त हैं। अतः यह शुद्ध हिन्दी लय है। यदि कोई "फ़ाइलातुन् फ़ाइलातुन् फ़ाइलात्" का फार्मूला बलात् लगा ही दे तो वह हैरानी में पड़ जाएगा, क्योंकि आगे के अन्तरा में मात्राएँ उन्नीस ही हैं और वे तथाकथित फ़ार्मूले में नहीं आती। बात यह है कि अन्तरा के सभी चरण पीयूषवर्ष छंद के हैं। अनुगीत का आधार पीयूषवर्ष छंद ही है, बस ध्रुवक की लय भिन्न रखने के उद्देश्य से मैंने उसमें एक लघु बढ़ा दिया है—

उम्र बीती शून्य को ही नापते
फिर सवेरे फिर बसेरे बार-बार

मात्रिकों की भाँति 'हलचल के पंख' में वर्णिक छंदों पर आधारित अनुगीत भी हैं। उदाहरणार्थ निम्नांकित पंक्तियाँ पढ़िए—

बीज है न पानी है न बाड़ है न माली है
फूल मुसकाते हैं कि फ़स्ल ही निराली है

यहाँ फ़ारसी तक़तीअ के खोजियों के हाथ भला क्या लगेगा ? पन्द्रह वर्णों के इस छंद के गोस्वामी तुलसीदास ने 'विनय पत्रिका' में अनेक प्रयोग किए हैं—

राम जपु राम जपु राम जप बावरे
घोर भव नीरनिधि नाम निज नाव रे

मैथिलीशरण गुप्त ने इसी छंद को ग्रहण करके कई काव्य रच डाले। यह छंद मनहरण छंद के एक चरण का उत्तरार्द्ध है और इसकी लय गतिमत्तात्मक है। मैंने इस लय को 'सुगम लय' में परिवर्तित करने के लिए अन्त के तीनों वर्ण गुरु (SSS) रक्खे हैं।

कहने का आशय यह कि छंद-प्रयोग में मेरी दृष्टि अनुगेयता पर रही है, अतएव मैंने अपनी लक्ष्य-पूर्ति-हेतु मात्रिक, वर्णिक या फ़ारसी छंद आदि सभी का अपने ढंग से विनियोग किया है।

अनुगेयता और गेयता में वही सम्बन्ध है जो अनुगीत एवं गीत में है। गीत एक व्यापक शब्द है। गीत का अर्थ है गाया हुआ, गाया गया, या

---

१ मोहन अवस्थी; 'देशदूत' इलाहाबाद, २६ अप्रैल, १९७३, पृष्ठ ४

जिसे गाया जाय अर्थात् गान। गीत शब्द गेयता का सूचक है। लेकिन गीत की गेयता समय-समय पर बदलती रही है।

भक्तिकालीन काव्यों के गीत शास्त्रीय राग-रागिनियों में बँधे हुए है। विषय या लक्ष्य के अनुसार उन गेय रचनाओं को कहीं 'पद' संज्ञा दी गयी है, कभी भावनानुसार उन्हें 'गीत' कहा गया है। इसी तरह आधुनिक काल में भी पूर्वोक्त रचनाएँ सामान्यतया 'गीत' ही कही गयीं। हाँ, विषयी प्रधान होने से उन्हें यदा-कदा 'प्रगीत' नाम भी दिया गया।

विद्यापति तथा उनके बाद कबीर, सूर, तुलसी, मीरा एवं अन्य भक्त कवियों के गीतों का अनुशीलन करने पर गीत की लय एवं टेक के सम्बन्ध में कई निष्कर्ष निकलते हैं। जहाँ तक लय का प्रश्न है प्रायः पूरा गीत एक ही लय का सहारा लेता है, जैसे मीरा का यह पद—

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई

पूरे का पूरा एक ही लय में है और टेक की तुक सभी चरणों में मिलती गयी है। परन्तु किसी-किसी गीत में टेक की लय शेष चरणों की लय से भिन्न रहती है, जैसा कि सूर के निम्नांकित पद से स्पष्ट है—

कहन लागे मोहन मैया मैया
नंद महर सो बाबा बाबा अरु हलधर सों भैया

कुछ गीतों में टेक-लय अधिकतर दो चरणों तक चलती है। वैसे तो प्रायः सभी चरण सम तुकांत होते हैं, लेकिन कवियों ने अन्तरा के चरणों में भिन्न-भिन्न तुकों की योजना भी की है—

अब मोंहि नाचिबो न आवै
मेरो मन मंदरिया न बजावै
ऊभर था सो सूभर भरिया त्रिसना गागरि फूटी
काम चोलना भया पुराना गया भरम सब छूटी
जे बहुरूप किए ते कीए अब बहुरूप न होई
थाकी सौंज संग के बिछरे राम नाम मसि धोई

कबीरदास के इस पद में टेक की लय तथा तुक का निर्वाह दूसरे चरण में है। उसके बाद दो-दो चरणों के अन्तरा अलग-अलग तुकों में चलते है। टेक की तुक अन्य चरणों में नहीं मिलाई गयी।

आधुनिक काल में पन्त, प्रसाद, निराला, महादेवी, बच्चन तथा अन्य कवियों ने टेक प्रायः एक चरण की (कभी-कभी दो चरण की) रक्खी, लेकिन अन्तरा-विनियोग में अनेक प्रयोग किये। इस तरह टेक, दो-तीन-चार या अधिक अन्तरा-चरणों के बाद आने लगी। एक अन्तरा की तुक दूसरे अन्तरा से भिन्न भी रक्खी गयी। भक्तिकालीन गीतों में तुकों का जमघट रहने से जो नीरसता-

सी आ गई थी वह दूर हुई परन्तु कई अन्तरा चरणों के बाद टेक आने से तुक मिलने मे काफ़ी अन्तराल पड़ने लगा।

भक्तिकालीन तथा आधुनिककालीन गीतों में लय-तुक, टेक-अन्तरा आदि के अनेक भेद हैं, मगर इनका ज्ञान 'गीत' शब्द से नहीं हो पाता। कबीर के पद में टेक की लय एवं तुक की आवृत्ति है। अनुगीत को यह आवृत्ति मान्य है, क्योंकि ऐसा करने से टेक में दृढ़ता एवं आह्लादकता आ जाती है।

यदि अन्तरा एक ही चरण का रहे तो गीत में दो विशेषताएँ उत्पन्न होती हैं--लयानुवर्तन और टेकानुवर्तन। अनुगीत में एक चरण के अन्तराल के बाद टेक का विधान है।

अनुगीत तुक-निर्वाह का क़ायल है। तुक यद्यपि कविता का अनिवार्य परिच्छद नहीं है, उसकी वजह से अनेक कठिनाइयाँ भी उत्पन्न होती हैं, कभी-कभी भाव का नाश तक हो जाता है। कुछ तुकें तो इतनी निश्चित हैं कि सुनकर सिर दुखने लगता है; 'आँख' है तो 'पाँख' ज़रूर आएगा। सभी तुकें अयत्नज तो हैं नहीं, अतः कवि को घिसी-पिटी तुकों से बचने में परिश्रम भी करना पड़ता है। इस विषय पर मैंने अपनी पुस्तक 'आधुनिक हिन्दी काव्य शिल्प' में विस्तार से विचार किया है। तुक में दोष हैं, फिर भी उसमें एक ज़बरदस्त गुण है। वह अपरोक्ष रूप से बराबर संकेत करती रहती है कि तुकवाली पंक्तियों का एक दूसरे से सम्बन्ध है यानी वे परस्पर अनुबद्ध हैं।

यह अनुबद्धता भी दो प्रकार की होती है—एक तो अन्तिम शब्द की अनुबद्धता अर्थात् अन्त्यानुप्रास-सम्बन्ध। इसमें श्रोता कभी-कभी चकराता भी है जैसे "अखियाँ हरिदरसन की भूखी" सुनकर श्रोता आगे के अन्त्यानुप्रास-हेतु उत्कंठा में पड़ा रहेगा। दूखी, रूखी, सूखी, खूखी आदि अनुमान लगाने में व्यस्त हो जाएगा, परन्तु जब उसे सुनने को मिलेगा "दुहि पय पियत पतूखी" तो वह चकरा जाएगा; क्योंकि 'पतूखी' से तो वह अनभिज्ञ था। भक्तिकालीन पदों में श्रोता को इस तरह की चकराहट बहुत होती है। रीतिकालीन कवियों ने इसीलिए दूसरे प्रकार की अनुबद्धता अपनायी। उन्होंने अन्तिम शब्द तो वही रक्खा, लेकिन उससे पहले के शब्द की तुक मिलाई—

तो बिनु बिहारी मैं निहारी गति औरई मैं
बौरई के बृंदन समेटत फिरत हैं।
दाड़िम के फूलनि मैं दास दार्‍यौ-दाना भरि
चूमि मधुरसनि लपेटत फिरत हैं।
खंजन चकोरनि परेवा पिक मोरनि
मराल सुक भौंरनि सपेटत फिरत हैं।

कासमीर हारनि कौं सोनजुही-झारनि कौं
चंपक की डारन कौं भैंटत फिरत हैं।

इस प्रकार की तुक को आचार्य भिखारीदास ने 'लाटिया तुक' कहा है। 'लाटिया तुक' के प्रयोग देव, पद्माकर, एवं सोमनाथ आदि कवियों ने ख़ूब किये हैं।

अन्त्यानुप्रास की जगह उपान्त्यानुप्रास की योजना रीतिकवियों की अपनी खोज थी या यह दरबारी फ़ारसी-कविता का सम्पर्क-फल था, इस बहस मे न पड़कर मैं इतना ही कहूँगा कि उन कवियों का यह सुचिंतित प्रयोग बड़ा कारगर सिद्ध हुआ होगा। अन्तिम शब्द निश्चित रहने से श्रोता को यदि उपान्त्यानुप्रास नितान्त अनानुमानित मिले तो भी वह उसे आगे के पूर्व निर्धारित शब्द से जोड़ लेगा। श्रोता का ध्यान चूँकि पूर्वनिर्धारित अंत्य शब्द पर रहता है, इसलिए उपान्त्यानुप्रास की आकस्मिकता, नवीनता बन जाती है। अनुगीतो में लाटिया तुक-प्रयोगों को अधिमान्यता मिली है, परन्तु उनमें उत्तम-मध्यम तुकों के अनेकविध प्रचुर प्रयोग भी उपलब्ध हैं।

इसलिए इस तरह के गीतों को मैंने जब 'अनुगीत' अभिधान दिया तो 'अनु' उपसर्ग की अर्थव्याप्ति पर मेरी पूरी नज़र थी। 'अनु' का अर्थ है अनुवर्तन। इसमें लयानुवर्तन के साथ टेकानुवर्तन और शब्दानुवर्तन भी आ जाता है। 'अनु' में नैरन्तर्य का संकेत निहित है तथा 'अनु' तुक-भाव-विचार की अनुबद्धता का अभिप्राय प्रकट करता है। यही नहीं, 'अनुगीत' में अनुगेयता के अतिरिक्त यह व्यंजना भी है कि गीत के पीछे वस्तुतः जो उद्गाता बैठा हुआ है उसे सुनिए।

यह बात सच है कि अब हिन्दी भाषा के वर्ण उच्चारण में स्वरान्त नहीं रहे। हम लिखते तो हैं 'चल' लेकिन बोलते हैं 'चल्'। मध्य स्वर की भी यही दशा है। लिखते हैं 'जनता' पर बोलते हैं जन्ता। इसी तरह लिखा जाता है चलते-चलते और बोला जाता है चल्ते-चल्ते। स्वरों में ह्रस्वता भी आई है। परन्तु नागरी लिपि में उसे प्रकट करने-हेतु कोई संकेत या मात्रा नहीं है। 'चेहरा' शब्द में 'चे' की ए मात्रा ह्रस्व है, 'होशियार' में 'हो' की ओ मात्रा भी ह्रस्व है। 'है' की ऐ मात्रा और 'तो' में ओ मात्रा भी प्रायः दबाकर उच्चरित होती है। इसलिए अनुगीत की लय-व्यवस्था में एक शब्द दो तरह से भी पढ़ा जा सकता है, उदाहरणार्थ 'वह' लीजिए। यह उच्चारण में 'वह्' हो जाता है और उसे 'वो' बोलते हैं। 'वो' में ओ ह्रस्व भी उच्चरित होता है, जो वास्तव में 'वह्' ही है। लय के अनुसार अनुगीत मे वह-वो का जो रूप उपयुक्त जँचा वही लिख दिया गया है। 'यह' और 'ये' के प्रयोग भी ऐसे ही हैं। व्याकरण में यह का बहुवचन 'ये' है। अतः 'ये' का प्रयोग बहुवचन में भी हुआ है।

भाषा यद्यपि भाव-विचार संप्रेषण का सर्वाधिक सशक्त माध्यम है, फिर भी उसकी अभिव्यक्ति सर्वथा निर्भ्रान्त नहीं होती। इसलिए विराम; अर्द्धविराम, कोलन, डैश आदि अर्थ-बोध सुगम बनाने-हेतु लगाए जाते हैं। परन्तु मेरा यह अनुभव है कि ये बोधन-चिह्न एक सामान्य-स्तर तक ही कारगर रहते हैं। मैंने अपने अनुगीतों में बोधन-चिह्नों का बहुत कम प्रयोग किया है, क्योंकि मुझे बराबर आशंका बनी रहती है कि यदि ये चिह्न लगा दिए गए तो भाव की व्यापकता बाधित हो जाएगी। मेरे अनुगीत "हमने हृदय में चोट को अडोल किया है" का एक बन्द है –

क्या चाहिए शब्दों का चमत्कार देखिए
गोपाल ने मिट्टी भरा मुँह खोल दिया है[1]

इसके प्रथम चरण में बोधन-चिह्न लगाकर निम्नवत् लिखा जा सकता है –

क्या ! चाहिए ? शब्दों का चमत्कार देखिए –
क्या चाहिए ? शब्दों का चमत्कार; देखिए –
क्या चाहिए शब्दों का चमत्कार ? देखिए –

परन्तु इन अर्थों में उलझकर पाठक मेरे अभिप्राय को नहीं पकड़ सकते। मेरी दृष्टि में जो भाव था उसके हिसाब से बोधन-चिह्न यों लगेगा--

'क्या' 'चाहिए' शब्दों का चमत्कार देखिए, अर्थात् पूरे ब्रह्माण्ड में 'क्या' और 'चाहिए' इन्हीं दो शब्दों का चमत्कार है। एक अन्य अनुगीत है "किसकी हिम्मत न तुम्हें वहम ने टोका होगा"।[2] उसकी एक पंक्ति है – "दृष्टि संपूर्ण पड़े यदि तो पार हो जाए"। इसे दो तरह से लिख सकते हैं – "दृष्टि संपूर्ण, पड़े यदि, तो पार हो जाए" अथवा "दृष्टि संपूर्ण पड़े यदि, तो पार हो जाए।" अस्तु बोधन-चिह्न न लगाकर मैंने पाठकों की कल्पनार्थ विस्तृत मैदान छोड़ दिया है।

सच पूछिए तो कविता, प्रवर श्रोता की मुखापेक्षी रहती है। सजग श्रोता सही अर्थ लगाता है, जबकि व्यंजना तक न पहुँचने वाले पाठक कुछ का कुछ समझ बैठते हैं। मेरे एक अनुगीत का एक बन्द सैकड़ों लोगों की जबान पर चढ़ा हुआ है –

जो बोझ बन के ज़िन्दगी की चाल रोक दे
उसको उतार फेंकिए वह सर ही क्यों न हो ![3]

---

१. धर्मयुग १८ मई, १९७५, पृष्ठ १५
२. कादम्बिनी, अप्रैल, १९९१, पृष्ठ १७२
३ कंचन प्रभा, फ़रवरी, १९८०, पृष्ठ ४२

इसी अनुगीत के अन्तिम चरण यों हैं

जिसका वजूद सिद्ध हो तर्कों के सहारे
उसको न सर झुकाऊँगा ईश्वर ही क्यों न हो

इन पंक्तियों को लोगों ने अनास्था के उदाहरण-रूप उद्धृत किया है। मुझे नहीं मालूम अनास्था की गंध उन्हें कैसे मिल गयी ?

भावाभिव्यक्ति जब प्रतीक द्वारा की जाती है तो अधिक ज़ोरदार हो जाती है, लेकिन प्रतीक से बेखबर पाठक उसे समझ नहीं पाता। यदि कहा जाय — "गजभुक्त पड़ा कैथ चकित देख रहे हैं" तो साधारण श्रोता इसे एक सूचना मात्र मानकर चुप हो जाएगा। किन्तु यदि यह मालूम हो जाय कि जब हाथी कपित्थ भक्षण कर लेता है तब वह कपित्थ उसकी लीद में समूचा वैसा का वैसा निकलता है; लेकिन फोड़ने पर उसके भीतर का गूदा गायब मिलता है, तो श्रोता परिस्थितियों की व्यंजना अत्यन्त गहराई से समझेगा।

ये चन्द संकेत, मेरे अनुगीतों के प्रति आपका दृष्टिकोण निर्माण करने मे मुमकिन है सहायक सिद्ध हों। अब इन अनुगीतों की भाव-सम्पत्ति, भाषा-भंगिमा और शैली-सम्पन्नता के बारे में क्या कहूँ ? हो सकता है किसी को इनके तेवर अलग दिखाई पड़ें, कोई अन्य इनमें युग-कराह की प्रतिध्वनि सुने। यह भी संभव है कि कोई इनके तीखे स्वर की शिकायत करे और यह भी असंभव नही कि इनकी ऊष्मा किसी श्रोता की चेतना को बेहद परिचालित कर दे। परन्तु एक बात निश्चित है कि इन्हें पढ़कर यदि मनन करेंगे तो हर्ष-शोक, प्रसन्नता-पीड़ा, आह-वाह तथा सुख-दुख आदि जो कुछ भी प्राप्त होगा, उसे आप अपने से अलग नहीं कर सकेंगे।

कवि अपनी रचना सुनाने के लिए सहृदय श्रोता की तलाश करता है। मेरे निकट श्री रमेश चन्द्र द्विवेदी ऐसे ही श्रोता हैं। अपना हर नया अनुगीत मैं जब तक उन्हें सुना न दूँ तब तक मुझे तुष्टि नहीं मिलती। डॉ० मुश्ताक़ अली, श्री जटाशंकर 'प्रियदर्शी' एवं श्री सन्तोष दीक्षित की सक्रियता से ये अनुगीत पुस्तक-रूप पा सके। ये सब लोग मेरे अपने हैं, इन्हें धन्यवाद क्या दूँ ? मेरी कामना है कि इनका यह काव्यानुराग मानवता के कल्याण में निरन्तर सलग्न रहे।

८/४, बैंक रोड, प्रयाग
४ फरवरी, १९९५

मोहन अवस्थी

: एक :

बदलूं किसे-किसे मैं, सोचा है विचारा है
फिर पास नहीं फटका जिस-जिस को निहारा है

मैं आ नहीं सकूंगा कुछ और काम भी हैं
यह मान लिया मैंने तुमने ही पुकारा है

हड़ताल पर हैं लहरें छायी है मुर्दनी-सी
कहते हैं चलन अपना सागर ने सुधारा है

भूले न भूलता वह उद्दाम भाव-प्लावन
लाखों को डुबोया है, दस-बीस को तारा है

कलियां चटक रहीं क्या डाका-सा पड़ रहा है
इस चीखती हवा में यह गंध दुधारा है

बेलें बलात् जकड़े हैं चूस रहीं मुझको
उस रक्त ने फूलों का रंग और निखारा है

कुछ मार वित्त की है, कुछ मार चित्त की है
पर रिक्त चक्षुओं का निर्घात करारा है

मेरा हरेक अक्षर पीड़ा की कुंडली है
हर शब्द व्यग्र धड़कन, हर अर्थ इशारा है

• दो :

हुआ क्या, रातभर कोई अगर सोया नहीं है
यही क्या कम कि उसने दिन अभी खोया नहीं है

उन्हीं को नींद की चाहत कि सपने देखते जो
कटीला कंकड़ों का पथ कभी टोया नहीं है

गया है रँग बदल फिर गंध में संकेत भी है
कि तुमने आंसुओं से घाव वह धोया नहीं है

उदासी क्यों अभी तक और रूखापन वही क्यों
तुम्हारा मन किसी के स्नेह ने मोया नहीं है

न तो मंडित, न है उन्नत, न जीवन में चमक आती
हृदय ने क्षण-कणों का हार संजोया नहीं है

सहूं कैसे हजारों लेप चेहरे पर चढ़े हैं
कि मैंने बोझ इतना तो कभी ढोया नहीं है

भयंकर भीड़ जिसमें हद नहीं है चिल्लपों की
यहां हर एक है कुछ इस तरह, गोया नहीं है

सुखी उसको समझिए, दुःख को पहचानता जो
दुखी वह, जो किसी की याद में रोया नहीं है



: तीन :

अजीब व्यस्तता जन-पथ गली सजाने की
ख़बर घुमड़ती रही बार-बार आने की

वह सौम्य रूप ! न शंका थी प्राण को, फिर भी
न आंख को हुई जुर्रत पलक उठाने की

मकान उसका कहाँ क्या मसीत मंदिर क्या
लगी है जिसको हर एक दिल का घर बसाने की

पता दिया था हमें आपकी कृपा ने ही
वृथा विकलता दिखायी मुझे जताने की

अभी तो गोद में कवि को व्यथा लिए बैठी
अभी न कीजिए मेहनत उसे मिटाने की

खुला कि रूठना कुछ की प्रकृति, नियति अपनी
पड़ेगी अब न ज़रूरत मुझे मनाने की

न सिर्फ़ खेद प्रकट करके काम चल सकता
ज़मीन चाहिए कुछ तो नज़र बचाने की

यह मेरी लौ है, नये दीप प्रज्ज्वलित होंगे
न फ़िक्र कीजिए हज़रत इसे बुझाने की

: चार :

बँध गया तो छूटने में व्यस्त अकुलाता रहा
बच गया यदि बंध से स्वच्छन्द पछताता रहा
दीर्घ इच्छा की सघन अंतर्ग्रथित केशावली
क्लेश सुलझाता रहा, उत्साह उलझाता रहा
देखकर मनहूस शक्लें और रोनी सूरतें
दुःख के डर से ख़ुशी को भी मैं झुठलाता रहा
लोभ ने कोंचा कभी, ईर्ष्या ने सनकारा कभी
तीर-सा तलवार के ऊपर भी सन्नाता रहा
हो मिलन की विछोह दोनों चित्त को मलते रहे
एक पिघलाता रहा तो एक छलकाता रहा
कब बंधी किरणें, बराबर मुट्ठियां बांधे रहे
तथ्य से लिपटा रहा मैं सत्य ठुकराता रहा
कान निःसंदेश, आंखों में निरुत्सव शून्यता
हर क़दम पर मन निगोड़ा मुझसे कतराता रहा
सब कहीं आघात फिर भी शान से पूरी कटी
जीत की उम्मीद पर हर गोट पिटवाता रहा

: पाच :

यदि यों ही कटी तो फिर क्या काम-धाम होगा
यति होगी किस जगह पर किस पर विराम होगा

जब झुक गयीं उंगलियां तो चित्र बने ऐसे
यदि वाम विधि हुआ तो क्या भाग्य वाम होगा

टेढ़ी है प्रेम की गति, अनुमान क्या लगाएं
कब गालियाँ मिलेंगी फिर कब प्रणाम होगा

कहने की ज़रूरत क्या ख़ुद गंध बोलती है
यह शब्द अहत नूतन, वह यातयाम होगा

गिरना तो सुनिश्चित है बस देर आज-कल की
बेलाग जो हुआ है वह बेलगाम होगा

मैं शब्द-चक्र पढ़कर कवि का भविष्य कह दूं
सम्राट बनेगा यह अथवा गुलाम होगा

सबकी कथा में शामिल है कीर्ति यही उनकी
हर बात अलग अपनी यह भी तो नाम होगा

: छह :

रत्नकण हमने बिखेरे बार-बार
ले गये भरकर लुटेरे बार-बार

उम्र बीती शून्य को ही नापते
फिर सवेरे फिर बसेरे बार-बार

हैं इरादे चांद सूरज के, मगर
ज़िंदगी को भूमि घेरे बार-बार

ज्योति के उपदेश ठंडे पड़ चले
हर उजेरे पर अँधेरे बार-बार

हम अकेले साथ कोई दे-न-दे
थक चुके हैं, कौन टेरे बार-बार

सच कहें तो कामना के हाथ से
हम गये जीभर कढ़ेरे बार-बार

कह रहे हैं क्योंकि तुम सीधे बहुत
सुख कहाँ, हैं दुख घनेरे बार-बार

है नियम तो बाद ही मेरे सही
तुम पढ़ो अश्रुगीत मेरे बार-बार

: सात :

कहीं पर पाश ही जीवन मदोन्नत व्याध क्या जाने
जिसे संवाद की फ़ुरसत नहीं प्रतिवाद क्या जाने
अकथ-गतिलोल-अंगों में थिरकती व्यग्र सिहरन ही
निनादित कर रही वातावरण, निर्नाद क्या जाने
विघूर्णित लोचनों में नाचते अंगार की लपकें
जिसे मूर्च्छित बनातीं वह सुदृष्टि-प्रसाद क्या जाने
चिकोटी काटती सांसें, फुरहरी फेरती यादें
सजग क्योंकर प्रमादी हो, अजग उन्माद क्या जाने
तरल सौंदर्य-आसव चू रहा है रोम-छिद्रों से
भुजंगम-दंश की दुःसह व्यथा प्रह्लाद क्या जाने
फंसा है दूर, पंकिल दृश्य बिंबों की नुमाइश में
अरे यह गाध-जीवनचर अगम जल-स्वाद क्या जाने
बनाये आयुकण भास्वर रतन जीतोड़ मेहनत ने
इसे संपत्ति-अपहर्त्ता कुटिल दायाद क्या जाने
करे अनुगीत की व्याख्या कहां वह लाल माई का
कि कवि निर्माण में ही हो गया बरबाद क्या जाने

आठ

भावनाओं का महल जब ढह गया
तब क्रिया का एक खँडहर रह गया

दौड़ना इतना पड़ा, संतोष-सुख
इस जगह कुछ उस जगह पर रह गया

हम अचेतन अन्य पर निर्भर रहे
यत्न पर परिणाम निर्भर रह गया

लोचनों में रूप-छवि अटकी रही
दीप्ति का आतंक घर-घर रह गया

रातदिन बातें बहुत सुलझीं, मगर
मैं व तुम का प्रश्न अकसर रह गया

शीश ख़ुद बलिदान हमने कब किया
मौत को भी एक अवसर रह गया

अक्षरी ताला मिलन से ही खुला,
भाग्य दो टुकड़ों में बँटकर रह गया।

नौ :

शक्ति संयोजित हुई अरमान के बिखराव में
और गहरे अर्थ निकले बात के उलझाव में

चीख़ पसरी सर पटकती, और सिसकन उत्प्लवी
है व्यथा की ही कथा टकराव में ठहराव में

देह है सर्वार्थसंभव इसलिए लिपटे रहे
यत्नपूर्ण बचाव ने फेंका अयत्न बहाव में

सोमरस ही तब नसों में बह रहा था मुक्त-सा
ख़ून पानी हो गया अब लक्ष्य के भटकाव में

शब्द-चितवन की अनूष्मा ने जला डाला हमें
पीसकर बिजली भरो इस शांत शीत स्वभाव में

घाव मेरा अब तुम्हारे ध्यान का कारण हुआ
एक जीवन खप गया इसके परंतु बनाव में

लोग पहचानें नहीं तो ज़िंदगी क्या मौत है
ठीक था पहले, मगर मैं मर गया बदलाव में

स्वर मधुरतामय उठा फिर नष्ट सहसा हो गया
मूढ़ कर पाया न भेद कसाव और तनाव में

दस

यह मत कहो अभाव ने दुष्पूर कर दिया
आंसू को मेघ आंख को मयूर कर दिया

पहले-पहल जो ज़िंदगी से मात खा गया
उसने रुदन सदैव का दस्तूर कर दिया

रसपूर्ण ताप-तुष्टि के विचित्र योग ने
चिंगारियों की मांग में सिंदूर भर दिया

अनुभूति-समझ एक थीं सुख-दुःख एक थे
हम क्यों बढ़े, सभी को दूर-दूर कर दिया

थी जो खरोंच काश उसे देखते नहीं
इस क्षार-दृष्टि ने उसे नासूर कर दिया

जब रंग उड़ा राग ले, मन हो गया ठंडा
मिसरी को बदल भाग्य ने कर्पूर कर दिया

माना बुरा सही सभी पहचान तो गये
बदनाम क्या किया मुझे मशहूर कर दिया

ग्यारह

दुख-भरा हर एक स्वर-संगम यहां
कौन सुनता और की सरगम यहां

ना नहीं है यह, मगर हां भी न है
व्यग्रता इस भाँति होती कम कहां

कर्म-बंधन ही हमारा धर्म है
तोड़ पाएं हम उसे, वह दम कहां

क्यों परिश्रम हो गया फलहीन-सा
क्या प्रतीक्षा में न कुछ संयम यहां

जाल में संबद्धता का सिलसिला
मुक्ति का लेकिन न कोई क्रम यहां

भ्रम मिटाने पर तुले हैं सब सुधी
बुद्धि है जब तक, मिटेगा भ्रम कहां

आपका संदेश हमको कब मिला
मिल गया होता, न होते हम यहाँ

बारह :

यदि है अमृत, अमृत सही, विष है तो विष बिखेर
जो देय तेरे पास है दे उसको न कर देर

अंगार खा रहा है अँगारों पै चल रहा
मन क्या, अजीब तत्त्व है जलकर हुआ न ढेर

आया जो यहां वह गया मुझको कुरेदता
तू भी कुरेद, किंतु कोई चित्र भी उकेर

वे थे महान तू है महत्तम उदास क्यों
बखिया उधिड़ चुकी तो वस्त्र-तंतु तू उधेड़

हर क्षण के एर-फेर से मैं तंग आ गया
रुख़ अपना इधर करले अगर मेरी मति न फेर

तब कुछ न सूझता था, चकाचौंध आज है
वह तम का अनाचार था, यह ज्योति का अंधेर

तेरह :

रह गये बनते बनाते काम बात बनी नहीं
कामना-संपत्ति-निर्भर-चित्त रंक धनी नहीं

उस तरफ़ काया पलट दी एक ही बरसात ने
यां निरंतर वृष्टि, फूली किंतु नागफनी नहीं

मान दुख-सापेक्ष्य सुख, दुष्काल सुख का पड़ गया
अन्यथा क्या मृत्यु भी उस काल की चटनी नहीं

आस बाक़ी थी नहीं तोड़ी बढ़ा आभार, पर
टूटती है सांस अब कथनी नहीं करनी नहीं

खुल गया ज्यों वस्तु वह अपनी नहीं, अपनी हुई
प्यार से जिसको कहा अपनी, हुई अपनी नहीं

देख अनदेखा जतन कैसे कहूं हैरान हूं
माल पारद-मोतियों की वायु में गुँथनी नहीं

बीत जब जीवन गया पूरा पता तब यह चला
ज़िंदगी जितनी समझते थे सरल उतनी नहीं

• चौदह

कहता नहीं हूं मैं कि न पथराव देखते
पत्थर का शिल्प ख़ून का रचाव देखते

संघर्ष दृश्य या अदृश्य भाग्य सभी का
संघर्ष देखना क्या, मेरा चाव देखते

कसकर गिरा पै सध गया, हैं सब चकित खड़े
अज्ञात अमृत-हाथ का प्रभाव देखते

कांटे ही कांटे शुष्क औ तीखे कुटिल, वहां
सुंदर विकल्प-बुद्धि का चुनाव देखते

पल भर में साथ छोड़ के सब सुख खिसक गया
असहाय मित्र दुःख का घिराव देखते

हर एक का स्वरूप जहां धूप-सा खिला
उस त्याग-भरे भाव का दुराव देखते

पंद्रह :

जहां गंतव्य प्रति गंतव्य लंम्बा पंथ तय कब हो
अगर हर क्षण नया सर्जन-सघन है तो प्रलय कब हो

भरी है आंख गद्गद कंठ लज्जा ने किया पानी
प्रतीक्षा-शुष्क कश्मल-शेष-मानस अग्निमय कब हो

इधर है याद, चिंता बीच में, उस ओर आशंका
उपस्थित सामने कोई न कोई फिर अभय कब हो

नहीं बोले बहुत बोले कि जितनी कल्पना मन की
प्रकट वक्ता तुरत हो जाय श्रोता किंतु क्षय कब हो

ग़जब का श्रम, दिलों की थाह लेते फिर रहे सब हैं
नयन की बात तक दुर्गम, विनय कब हो अनय कब हो

डुबोया हेम सागर की अभिद्रुत तुंग लहरों ने
छलकती ज्योति-निर्मित मूर्ति का देखें उदय कब हो

हमें तुम और तुमको हम नज़र आते बहुत छोटे
बड़ी दिक्काल की महिमा, असत्, लेकिन विजय कब हो

हमारी उम्र थोड़ी है तुम्हारी है कथा लंबी
तुम्हारी ही सुनें अपनी सुनाने का समय कब हो

सोलह

जमघट हैं अभी उर में उन त्रस्त-सी रातों के
पदचिह्न बड़े गहरे विक्षोभ की घातों के

दम तोड़ते अधर पर ज्यों सलवटें हँसी की
आभास उभरते हैं यों चांदनी गातों के

जब पैर डगमगाते, तो हाथ थाम लेते
उड़ते हुए नमस्ते, उन रँग-भरे हाथों के

जो साथ जूझ जाएं ऐसे सुभट कहां हैं
कुछ शेर तराई के, कुछ शूर क़नातों के

हर बार वही पृच्छा कब कौन कहां कैसे
अज्ञात की न पूछो ये हाल हैं ज्ञातों के

कुछ रागयुक्त ललकीं आंखों की जल-तरंगें
नूपुर लगे झनकने आयी-गयी बातों के

कितने भले अँधेरे जो सहज सुलभ होते
कितने दिमाग़ ऊंचे हैं सुनहरे प्रातों के

चोटें हैं, डूबना है, लेकिन बहाव देखो
दुख से कहीं अधिक हैं उपकार प्रपातों के

• सत्रह :

हैं मार्ग में शिला-सी प्रथाएं तो क्या करें
पग-पग पै ठोकरें जो न खाएं तो क्या करें

साहस जवाब दे गया हाथों में बल नहीं
बैठे हुए बातें न बनाएं तो क्या करें

चलने की बात सोच के सब अंग जल उठे
अब पांव में मेहंदी न रचाएं तो क्या करें

प्रतिकूल चल रही हैं हवाएं तो क्या करें
हम अपना हौसला न दिखाएं तो क्या करें

जो कुछ भी है प्रकाश सो सूरज के दम से है
हैं लीन चंद्रमा की कलाएं तो क्या करें

रोना सिखा दिया, सभी दुःखों की जड़ यही
अपना ही घर अगर न जलाएं तो क्या करें

मंत्रों को भ्रष्ट, देख के श्लोकों की दुर्दशा
आने में लजाएं न ऋचाएं तो क्या करें

बगुलों की उठी चोंच औ चातक की झुक गयी,
यदि इनकी गर्दनें न उड़ाएं तो क्या करें

अट्ठारह

न सुना कुछ अगर-मगर मैंने
सब पै छोड़ा सही असर मैंने

एक ही ईंट के खिसकने से
सौध देखे हैं खंडहर मैंने

घर ढहा नींव के लिए अपना
और उठवा दिये नगर मैंने

रंग बदला हुआ मिला उसका
आह जिस-जिस की ली ख़बर मैंने

भूमि पर पैर क्यों धरें अब वे
कर दिया जिनको पक्षधर मैंने

मैं इकाई हूं मूल्य मत आंको
किये एकत्र शून्य भर मैंने

स्वर्णकण हाथ आ गये तो क्या
खाक छानी है हर डगर मैंने

: उन्नीस

न बेधा लक्ष्य को लेकिन निशाना साधा अच्छा था
प्रफुल्लित तो बनाया कुछ समय तक वादा अच्छा था

कटक कृत्रिम सुगर्वित वेश को कर ध्वस्त पछताए
अपावृत रूप कुत्सित है, अवांछ्य लबादा अच्छा था

घुणाक्षर-न्याय ने तुमको दिया यश, तोष हमको भी
बना पाए न हम कुछ काम, किंतु इरादा अच्छा था

लिया इस-उस से छलकाया किसी के क्या गले उतरा
सलीक़ाहीन इस पूर्णत्व से तो आधा अच्छा था

मिटा सब भेद सदसत् का कि कायर जौहरी अब हैं
अलंकृत किंतु निर्लय साज़ से तो सादा अच्छा था

न रँग-अनुरूपता है पर चमक वितिमिर तो करती है
सँजोने वाले कहते हैं कि शब्द खरादा अच्छा था

रहा जो बीत, जो बीता, मिलाकर उसको कहता हूं
मेरा होना है अच्छा, पर न होना ज़्यादा अच्छा था

- बीस -

जो समझकर भी न समझें उनको ही समझाना था
खूब जो समझे हुए थे उनसे सर टकराना था

मौन भी वाजिब था, बतरस की टपक भी थी उचित
अक्षरों की चाल डगमग थी, न वह हकलाना था

रस-सरोवर दृश्य उन पर मन-भँभीरी की उड़न
दौड़ना, रुक थरथराना, सोचना-पछताना था

फूटकर रोना अलग था, घाव का बहना अलग
कंठ का लेकिन भर आना घाव का भर जाना था

क्या श्रवण-उत्साह, नेत्राकर्ष, पद-क्रम क्या ग़ज़ब
जोड़ना वह हाथ झुककर प्राण का हथियाना था

दंग थे सुनकर विसंगतियों का नव संगीत हम
रंग में थी प्रौढ़ता, पर ढंग सब बचकाना था

गर्व उन्नत शीश, वक्षःस्फीत, अति सहमे वचन
चांद का खुल खेलना ही पद्म का सकुचाना था

आपकी निष्ठा व अनुशासन प्रमाणित हैं, मगर
क्या कृपा का अर्थ जब कि कृपाण ही चमकाना था

: इक्कीस :

गया है मन बहुत दिन का, कहां आशा कि आ जाए
करिश्मा देखिए, जो खोजने आए लजा जाए

अँधेरे पर अँधेरे जम चुके इतने कि धोखे से
कहीं एक पर्त जाए टूट, जीवन जगमगा जाए

सभी उत्सुक प्रतीक्षा में नियति की भी परीक्षा है
कृपा की दृष्टि किस पर हो, किसे पहले ठगा जाए

अगर अनिवार्य बँधना तो मुझे उस हाथ से बांधो
कि बँधकर मैं सधूं, जो मुक्ति को पीछे लगा जाए

प्रणय-उत्सव वहां तोरण बँधे हैं आग-पानी के
किसे अब भाग्य चमकाए, किसे पूरा डुबा जाए

दुखों के तीत रस ने यों उठा दीं चेतना लहरें
कि यदि मैं पैर रख दूं तो डगर भी डगमगा जाए

बाईस

प्रतिकारहीन सारा व्यापार हो गया है
सुख दुख का अब बराबर आभार हो गया है

अधिकार-दग्ध तुम हो धिक्कार-दग्ध मैं हूं
सर्वत्र आग का ही विस्फार हो गया है

दुर्भाग्य सही लेकिन निर्भाग्य तो नहीं हूं
विक्षेपरूढ मन ही आकार हो गया है

अनुचर कि अग्रचर था, सहचर था, चुप मुखर था
पर मुंह लगे-लगे यह मक्कार हो गया है

उस दाग़ पर बड़ा-सा यह दाग़ आवरण है
अब रोग भी हमारा उपचार हो गया है

क्या स्वाद-गर्व बेढब है पैर चाटने का
जिससे कि अर्थ-सेवक सरकार हो गया है

अटकाव जहां पर है बदलाव भी वहीं है
अपकार ही चमककर उपकार हो गया है

क्षण कण नहीं है तो फिर क्रम किस तरह बिठाया
वह सोमवार क्योंकर रविवार हो गया है

जब तक न उच्चरित था प्रति शब्द क्षरित मधु था
बाहर की हवा खाकर निस्सार हो गया है

: तेईस :

मैं चुप तो रहूँ, ठीक ये व्यवहार में नहीं
औरों को रोकना मेरे अधिकार में नहीं

तस्वीर मुझे देके उमंगें न मिटाओ
जो कल्पना में प्राप्त, वो आकार में नहीं

दर्पण में मुंह खिला है बस हम क्या कहें क्या है
फूलों में दहक या महक अंगार में नहीं

जो बात टीस बनके उतर जाय चित्त में
वह बात लिखी जाय समाचार में नहीं

उड़पन है कुमारी लगन विद्रोह की जिसे
टिकती कभी कहीं किसी परिवार में नहीं

अनुराग की पहचान है बहकी हुई बातें
जिनकी नकार होती है इनकार में नहीं

हम मानते कि रोग नहीं लाइलाज है
है तो दवा, परंतु है संसार में नहीं

अनुगीत अलोचक को दिखाई न पड़ेगा
...र वस्तु प्राप्त होती है बाजार में नहीं

• चौबीस •

बदलकर मैं बना जब तुम हटा प्रतिदान का अंतर
पराया कौन, अपना कौन, है पहचान का अंतर

विषम संघर्ष से वैषम्य मेटा, ख़ूब ! पर यह क्या
कहीं अनुमान का अंतर कहीं अभिमान का अतर

वहां तो ठीक थे, आकर यहां क्या हो गया तुमको
कि कोसों बढ़ रहा है आंख मुंह औ कान का अंतर

गये दृग फैल, सिकुड़ी नाक, रसना पर फिरा पानी
रहा प्रतिमान का अंतर कहां प्रतिभान का अंतर

नहीं पहुँचे, यहीं पहुँचे, कहीं पहुँचे, वहीं पहुँचे
पहुँच अपनी जहां तक थी वहां प्रणिधान का अंतर

थके दो तीन, डूबे चार छह, एकादि कुछ उछरे
समुद्रानंत्य में सब धुल गया औसान का अंतर

मिले क्यों धूल में रो-रो, मरे क्यों अरथियां ढो-ढो
मरण बन सामने आया घर और मसान का अंतर

• पच्चीस •

उठती हुई लहर की कमर तोड़ चुके हैं
निर्माण में इतनी-सी कसर छोड़ चुके हैं

क्या चांद से लगाव प्रभाकर से जलन क्या
आकाश का रंगीन सफ़र छोड़ चुके हैं

इस काल की बातें करो इस हाल को देखो
प्रेतों के शिकंजों का असर छोड़ चुके हैं

निभ जाय तो निभ जाय कोई हठ नहीं हमको
यों निभने-निभाने की डगर छोड़ चुके हैं

अंधड़ है प्रखर-मार कंकड़ों के खड़ाके
अच्छा हुआ कि कांच का घर छोड़ चुके हैं

जो हाथ बढ़ायेगा कुछ न कुछ वह पायेगा
स्वर-चाप दीप्त शब्द के शर छोड़ चुके हैं



: छब्बीस :

आयी विपत्ति आयी घटना बहुत भली है
आश्चर्य है कि क्योंकर इतने दिनों टली है

उन्नति प्रगति महत्त्वाकांक्षा न देख सकती
पौरुष-परायणा यह निर्बाध पुंश्चली है

हम व्यग्र शरण-व्याकुल, तुम उग्र दर्शनाकुल
बस शांति की पुरी में इतनी-सी खलबली है

जीवित तो गड़े गहरे मुर्दे कुलांच भरकर
लोहा बजा रहे हैं यह वह रणस्थली है

दुर्भेद्य जालगत हूं निर्व्याज कश्मकश में
अंधों का दल है लंगड़ों की एक मंडली है

दुर्गर्त भीम पर्वत लपटें उदधि गहन वन
सिमटे हुए बैठे हैं अनुगीत की गली है

सत्ताईस

हमने हृदय में चोट को अडोल किया है
संवेदना का सिर्फ़ यही मोल दिया है

मधुपान कराने का मधुरतर है तरीक़ा
जैसे गरल में और गरल घोल दिया है

क्या चाहिए शब्दों का चमत्कार देखिए
गोपाल ने मिट्टी-भरा मुंह खोल दिया है

वे फेनपिंड एकदम विलीन हो गये
हर अर्थ व्यंग्य बन गया जो बोल दिया है

समझें उसे कि आपको कि प्रश्न मेरा, जो
सीधा था पर जवाब गोलमोल दिया है

जीवन व मृत्यु का हुआ मालूम भेद यों
इतिहास ले लिया हमें भूगोल दिया है

अब मैं कढ़ूं, छिदूं, नहीं कुछ दोष किसी को
क़िस्मत ने मोतियों की तोल, तोल दिया है

: अट्ठाईस :

मुझे मुख पर किसी क्षण रंग तो लाने नहीं देते
झलक-अवसन्न मन को किंतु घबराने नहीं देते

विखंडित अंग हैं अपने शिलाओं पर पटकने से
इधर वे मेघ को भी देह सहलाने नहीं देते

बनी है रात दिन, दिन हो गया है रात, क्या कहना
किसी भी बात का कोई पता पाने नहीं देते

रुपहली याद की संतति सुनहली घेरती है, पर
समय के अति नुकीले डंक भरमाने नहीं देते

प्रणय-विस्तार से आकाश उड़ने को मिला पूरा
किरण के जाल लेकिन पंख फैलाने नहीं देते

किया घोषित कि कवि गूंगा निरुत्तर देखकर सहसा
चुटीले भाव मुझको ओठ फड़काने नहीं देते

मनःस्थिति है हमारी रेलगाड़ी के मुसाफ़िर की
जहां बैठे वहां फिर और को आने नहीं देते



• उनतीस •

तुम्हारे ध्यान में मन यों रमा है
तुम्हें देखूं मुझे फुर्सत कहां है
हमारी दृष्टि में तो शून्यता है
तुम्हारी दृष्टि में सब कुछ जमा है
अगम है दृष्टि इसमें क्या नहीं है
भयंकर दंड है अद्‌भुत क्षमा है
कहीं क्या दृष्टियां टकरा गयी हैं
जलन चिनगारियां कड़ुवा धुँआ है
किसी को दृष्टि शायद मिल गई है
नया उल्लास है नूतन समां है
परस्पर दृष्टियां घुलमिल गयी हैं
कहां है 'मैं' बता तू 'तू' कहां है
पहेलीदार उलझी दृष्टियों में
जहां पर मन फँसा जीवन वहां है

• तीस :

न मानव से बड़ा कुछ ज्ञान का निर्यास है इतना
चलूंगा मैं बनेगा पथ नया, विश्वास है इतना

किसी को देखकर भागा, लिया हुलकार आग्रह ने
करे अरि-मीत का निश्चय किसे अवकाश है इतना

अकेला ही रहा, पर छोड़ बैठा जब से आदत वो
गया सुख, दुख का हंगामा भी अब सायास है इतना

भटकती मेघ-चक्रों में न फिर भी एक क्षण रुकती
विकल ज्योतिष्मती को देखिए, उल्लास है इतना

तमोनुद क्या, जहां पर लोचनों की दृष्टि ग़ायब है
प्रभाकर की प्रभा बेकार, जब खग्रास है इतना

दबाऊं एक पीड़ा को कि तब तक दूसरी उभरे
फँसे जो पतझरों की संधि में मधुमास है इतना

कहीं से बांह फैला दे गले मेरे स्वतः पड़ती
मेरी संप्राप्ति का आपत्ति को अभ्यास है इतना

इकतीस

यों मुक्ति मिली पिंजड़ा टूटा उसमें रहनेवाला भी मरा
उजियाले के दर्शन न हुए कहने को अँधियारा भी मरा
विश्राम-चिकीर्षु-चरण थहरा नीहार-नयन पथ गर्त्त-भरा
पाथेय लिये प्यारा भी मरा बिलखाता बे-चारा भी मरा
एकार्थ विपक्ष विलीन हुए, सर्वार्थ बिखरकर लीन हुए
न्यायालय में यह न्याय मिला जीता भी मरा हारा भी मरा
किससे पूछें अब हाल विपति थी कितनी कैसे कटती थी
वे लोग मिटे लिखते-लिखते, ढो-ढोकर हरकारा भी मरा
अपनी मस्ती को क्या कहिए, मिटने से कम मंजूर न था
गिरती कगार ने प्राण लिये, फिर धारा का मारा भी मरा
संताप सहा, कुछ बात नहीं, पड़ बान गयी, पर सोच यही
काया का कांच न स्वर्ण बना, ताँबा भी मरा, पारा भी मरा



बत्तीस

बिजली पै चिताओं ने कुछ राख लपेटी है
यह चेतना हमारी यों क्लांत-सी लेटी है

आकार उम्र से क्या, इच्छा सदा नयी है
यदि मस्त, स्वामिनी है, यदि पस्त तो चेटी है

सारा महत्त्व उसका गँठजोड़ हुआ जिससे
कोई नहीं कनेठी, कोई नहीं जेठी है

अति बोझ-भरा जीवन, मन-वत्स जुत गया है
गतिशील रहे इससे हर दीठि पनेठी है

उपकार कम न यह भी, जो भाग्य-लिपि हमारी
मेटी नहीं है तुमने, थोड़ी-सी समेटी है

कुछ रंग तो लायेगी यह क्रांति पल रही जो
विद्रोह की माता है संघर्ष की बेटी है

तैंतीस

अरे इन खोखलों को फूंककर कब तक बजाओगे
कहां तक लुंज-पुंजों को पकड़कर यों उठाओगे
धनुष टूटे हुए हैं डोरियां भी बेहतर उलझीं
तुम्हारे पास हैं तो बाण, पर कैसे चलाओगे
यहां निद्रा नहीं, निष्प्राणता की शांति हावी है
स्वयं क्या मुस्कराओगे, इन्हें क्या गुदगुदाओगे
लगाकर पंख तुमने मछलियां बिल्कुल नयी कर दीं
हवा में तो उड़ाओगे मगर कब तक बचाओगे
मची है लूट धन पांडित्य की पद की प्रतिष्ठा की
किसे यह मधु चखाओगे ज़हर किसको पिलाओगे
तुम्हारी रुचि लगन निष्ठा सतत गतिशील हैं, लेकिन
हमारा धैर्य जीवट और कब तक आज़माओगे
प्रकृति अथवा विवशता भी तो कोई चीज़ होती है
न मैं ही बाज़ आऊंगा, न तुम ही मान जाओगे

: चौंतीस :

सुकुमार जिगीषा में कल्पनाएं ढल गयीं
राही के पांव छूने को राहें मचल गयीं

चाहों की हेम चिनगियां आहों में फल गयीं
आहें रुकीं तो अर्थ है चाहें निकल गयीं

अंतर की आग व्यक्त बनायी कि मरण है
यह रक्त की चमक थी शिराएं जो जल गयीं

लहरा रहे थे शून्य में गर्दन हिला-हिला
उन धूम-केचुओं को हवायें निगल गयीं

संहार लो स्वतेज उभरने दो और को
रवि अस्त सितारों की सभाएं सँभल गयीं

वाणी की शुभ्र धार में डुबकी लगाइए
छू तप्त भाव शब्द की गांठें पिघल गयीं

पैंतीस

दुख-दाह-भरी आ तो गयी सांस क्या कम है
यद्यपि अपूर्ण, पूर्णता की प्यास क्या कम है

है मौत अवम तिथि, तो अवम तिथि की कथा क्या
जो प्राप्त हुआ है वही मलमास क्या कम है

प्रति बार दिलासे में नया एक था झांसा
हर बात तमाचा थी, ये इतिहास क्या कम है

तुमने दिखाये चिह्न चोट के, मगर यहां
नख-संधि में जो धँस गयी वह फांस क्या कम है

छूटा अघासुरों से पिंड पर कुशल नहीं
संख्यासुरों के तंत्र का संत्रास क्या कम है

संभव कहां कि दृष्टि सभी की इधर पड़े
हम हैं सुगंधि-घर यही अहसास क्या कम है

• छत्तीस •

बुढ़ापे की समझ के साथ बचपन आए क्या कहना
लड़ाई मृत्यु की यदि मृत्यु से ठन जाए क्या कहना

पलक गिरना कि जैसे पैर पर तलवार का गिरना
अगर पलकों का बंदनवार यह तन जाए क्या कहना

बुरा कोई नहीं तन या कि धन, यों कर्ममल दोनों
स्वयं ही इनसे टकराने न यदि मन जाए क्या कहना

अजंब-सा एक हलकापन दया, विपदा, पुलक, देतीं
निरंतर ज़िंदगी इस भाव से सन जाए क्या कहना

न तू कुछ चाहता, मैं चाहता सब कुछ, न कुछ मिलता
तेरी इच्छा अगर इच्छा मेरी बन जाए क्या कहना

सैंतीस

किससे मनीषियो मैं कहूं, गति-विकास को
जाता हूं दूर देखता जो आसपास को

क्यों शीर्ण वृक्ष पात पै आंखें लगी हुईं
मन में जमा रही हैं बीज की उगास को

विपरीत चाल का भी मज़ा था अलग कभी
अब साथ चलके देख समय के विलास को

आयी थी एक याद यही याद आ रहा
इस याद से उस याद के काटूंगा पाश को

जल आग से रंगीन है मिट्टी की गोद में
दूं श्रेय किरण को, कि ओस को, कि घास को

सौंदर्य ने खींचा कि लिया बांध प्रेम ने
जाते कहां, फ़ुर्सत न मिली कालिदास को

मुसकान-आंसुओं के बीच ज़िंदगी पिसी
भवभूति को प्रणाम, नमस्कार भास को

पानी पिया है रोज़ कुएं खोद-खोद के
प्याऊ बुझा सकेगी किस तरह से प्यास को

: अड़तीस :

सभी पूछते हैं समाचार क्या है
समाचार का किंतु आकार क्या है
अभी ओठ फैले, अभी ओठ सिकुड़े
समाचार क्या था, समाचार क्या है
असंतोष अनुताप ही जिंदगी यदि
बिना मृत्यु के फिर प्रतीकार क्या है
अगर जिंदगी से पुनः जिंदगी है
कहो मौत का और आधार क्या है
जहां तक नज़र थी पड़ा नाम जीवन
मरण यह कि देखा न उस पार क्या है
रहे खोलते दृष्टि की गांठ भौचक
कि बंधन कहां है कि उद्धार क्या है
रुकी आंख ऊपर झुकी आंख नीचे
तिरस्कार क्या है नमस्कार क्या है

उनतालीस

हालांकि आप ख़ुश न हुए दुःख पालकर
दुख झेलिए न, दुःख को बाहर निकाल कर

सरदार से मिलो कि मिले तुष्टि, यहां तो
सर ही नहीं है, लाभ क्या टोपी उछाल कर

दिन ने तो पता रात का लगने नहीं दिया
फिर रात का सिक्का जमा दिन को निढाल कर

मुझसे अलग-थलग है इसी से तो व्यग्रता
संकट भी साथ-साथ चले हाथ डाल कर

तेरा स्वभाव और इधर मेरी विवशता
अपनी तरफ़ भी देख औ मेरा भी ख़्याल कर

मुझ-तुझ को गला दें जो गले सबको लगा लें
वे शब्द-रत्न ला रहा दुनिया खँगाल कर

जो कुछ मिले, प्रयोग कुशल उसका, योग है
कर लोचनों को बंद कि आंखें विशाल कर

चालीस

हमारी चाल यद्यपि तीव्रतर है
तुम्हारी दृष्टि भी तो अति प्रखर है
करें गति-दान का संकल्प कैसे
तुम्हारे सामने जब चर अचर है

नहीं स्वीकारता है जग किसी को
सभी के प्रति वही आक्रोश स्वर है
न रेखें तक उठी क्या बात मानें
अभी खेलो अभी कच्ची उमर है

जवानी आ गयी है तो हुआ क्या
न निर्णय संतुलित धूमिल नज़र है
बुढ़ापे में हुई है बुद्धि ढीली
कहां पहुंचा ज़माना कुछ खबर है

तुम्हारा कष्ट तो है ज्ञात, लेकिन
स्वयं हम हैं, स्वजन हैं, और घर है
रहे हम चुप, रहे चुप, चुप रहे हम
मुखर था जग, मुखर है जग मुखर है

: इक्तालीस :

जवासे पर कृपा की तो मृदुल जलधार से मारा
उमँगते नौनिहालों को उपल-बौछार से मारा

बचे जो शेष कूजन से, उन्हें चीत्कार से मारा
नहीं तो गीत से या हास या सीत्कार से मारा

दिनों को कर दिया दुर्दिन अंधेरा सब जगह फैला
अचल गिरि तुंग तरुओं को तडित् तलवार से मारा

दुखी के दुःख हम थोड़े दिनों में दूर कर देंगे
कथन का देखिए जादू कि मिथ्याचार से मारा

लगे कर्त्तव्य में जो मिट गये सुलझीं समस्याएं
न समझे मूल्य जो कर्त्तव्य का, अधिकार से मारा

करों में भींचकर ज़िद की तराशेंगे नया फिर से
सृजन की प्रक्रिया यह थी निपट संहार से मारा

• बयालीस :

वर्ष दे युग कल्प दे बस एक छिन मेरे लिए
एक-दो गिनता रहा दो एक गिन मेरे लिए

हाथ जिसने जो बढ़ाया पा गया है क्या कमी
दिन इसे तो रात उसको दे अदिन मेरे लिए

खुल गया जब कोश अक्षय काम सब पूरे हुए
पूर्णकाम उपाधि देगा कौन बिन मेरे लिए

गात उज्ज्वल हास शीतल दृष्टि निर्मल है कहां
अंग शिथिलित ढंग विगलित मन मलिन मेरे लिए

धूम संशय की लकीरो, शुभ्र निश्चय-अर्चियो
यों न घुमड़ो, यों न भटको, तुच्छ तृण मेरे लिए

पद्मवन है, चांदनी सुंदर, मगर मैं क्या करूं
फड़फड़ाता चीख़ता बीहड़ विपिन मेरे लिए

अब त्रिभुज अथवा चतुर्भुज वृत्त या बहुभुज बनूं
बिंदु-सा सिमटा हुआ हूं, क्या कठिन मेरे लिए

: तैंतालीस :

मिटेगी किस तरह चिंता यही चिंता मुझे अब है
घटी घटना से क्या लेना घटी क्यों इससे मतलब है
नज़र है लक्ष्य के ऊपर कहां हैं पैर क्या देखूं
अजब सिद्धांत चल निकला कुढब है तो भी कुछ ढब है
नहीं निर्देश पथ का हो सका उस ओर जन-रव में
इधर क्षण-क्षण हज़ारों-पंथ-मुखरित मन का कलरव है
व्यथा-व्याकुल-हृदय-समकाल रचना हो नहीं सकती
बिना संताप के शीतल हुए वर्षा हुई कब है
न कुछ बर्ताव बदला या क्रिया बदली, न रुख़ बदला
मगर परिवेश परिवर्तित, ये किस तेवर का करतब है
अगर यह है तो है वह भी, अगर वह है तो है यह भी
कहां है वह, कहां है यह, जहां हूं मैं वहां सब है

चवालीस

दस बार पुकारूं कि पुकारूं हजार बार
क्या एक अनुत्तर ! न है स्वीकार न इनकार
अच्छा कि मैं पत्थर से कहूं व्यग्र मन का हाल
ध्वनि में नहीं समर्थ, प्रतिध्वनि में तो उदार
होते न अर्थ शब्द के होता न कुछ विकार
संकोच ही संकोच है, विस्तार ही विस्तार
थे मग्न कभी भाव का देखा बड़ा प्रस्तार
प्रस्तार कहां आज तो झंकार ही झंकार
सौंदर्य-प्रेम एक हुए खिल गया स्वरूप
कर्त्तव्य ही कर्त्तव्य है, अधिकार ही अधिकार
किस भाँति बताऊं जो रही मन पै मेरे बीत
अभिव्यक्ति नक़द चाहती, चलता नहीं उधार

पैंतालीस

सब कुछ हूं कुछ नहीं हूं ये तूने दिया मुझे
इस कुछ ने कहां से कहां क्या-क्या दिया मुझे

श्रम मैल एक को मिला, गति एक को मिली
क्या ख़ूब ! इस जगत का खरहरा किया मुझे

आंखों ने जीभ-कान ने दाँतों ने दुख दिये
गुर्दे के तीव्र दर्द ने मुर्दा किया मुझे

गुण-काल-कर्म-जन्य-सुरापान की सभा
चंचल नियति का चक्र, उठगिरा किया मुझे

कल-आज ने उलट-पुलट के बे-तरह धुना
उड़ते हुए पुर्ज़ों ने फिर नया किया मुझे

सहमे हुए संकोच से सूखे हुए मन को
लपटों ने चूम-चूम रस-भरा किया मुझे

निरपेक्ष औ अकंप रूप, किसको दोष दें
मेरी सतर्कता ही ने अगवा किया मुझे

मिलना था जिनसे दुख मिला होता तो दुख न था
दुख है कि उनके सुख ने अधमरा किया मुझे

उस आर्त दंडवत से, बूँद आंसुओं की जो
इस सिर पै पड़ी उसने सिरफिरा किया मुझे

छियालीस

कौन गिनता है किसे लाख अकड़ते रहिए
हम कि तुम, तुम नहीं हम, ख़ूब झगड़ते रहिए

चाँदनी धूप हवा व्यक्ति तमस् इच्छाएं
संसरणशील हैं किस-किस को पकड़ते रहिए

गर्म मिट्टी में दबे बीज से जीवन ने कहा
कुछ दिनों और अभी शांति से लड़ते रहिए

सर ही चढ़ना नहीं पर्याप्त कि मन करता है
पांवड़े बन के किसी राह में पड़ते रहिए

वायुमंडल को गमक गूंज से यदि भरना है
गंध को फूल की बांहों में जकड़ते रहिए

मोरचा लग न सके और चमक बढ़ जाए
दृष्टि सौंदर्य के चरणों पै रगड़ते रहिए

आम मानव की जिन्हें खोज बहुत ख़ास हैं वे
उनके सँग चलने का मतलब है उजड़ते रहिए

सैंतालीस

गया दिन बरातें सजाते-सजाते
कटी रात सेजें बिछाते-बिछाते
थके पांव उठकर बिठाते-बिठाते
गये टूट कंधे उठाते-उठाते
सभी तौर अरमान पूरे किए, कुछ
अकड़ गर्व में कुछ लजाते-लजाते
न देखा किसी ने किसी को न देखा
रहे लीन परदे उठाते-गिराते
मिला जो जहां खेत में सब उंड़ेला
हुआ नाक में दम निराते-निराते
महज़ क्रम बदलता रहा रजकणों का
गये मिट लकीरें मिटाते-मिटाते
मगर उँगलियां बन गई हैं मशालें
तिमिर-बीच किरनें उगाते-उगाते
हुआ रुग्ण मन स्वस्थ फिर सर्वग्रासी
दुखों का रसायन खिलाते-खिलाते

अड़तालीस

है हार गले का मेरे विषधर ही क्यों न हो
मन में तो नगर बस गया बेघर ही क्यों न हो

क्यों, क्यों नहीं बिजली-भरे-बादल की तड़प से
नन्दन-सा खिलखिला उठे ऊसर ही क्यों न हो

जो बोझ बन के जिंदगी की चाल रोक दे
उसको उतार फेंकिए वह सर ही क्यों न हो

तर-तम की पीठ फेर के मत-हीन रत खड़ा
मालिक से भी बड़ा है वह नौकर ही क्यों न हो

पिघला हृदय उमंग में अधरों से झर पड़ा
संपूर्ण महाकाव्य है अक्षर ही क्यों न हो

देते हैं उगल चोट से पत्थर भी रोशनी
आती है चमक पंथ पै नश्वर ही क्यों न हो

जिसका वजूद सिद्ध हो तर्कों के सहारे
उसको न सर झुकाऊंगा ईश्वर ही क्यों न हो

• उनचास •

न तुमको हृदय की सुनाना नया है
तुम्हारी समझ में न आना नया है

वही टालना है वही सालना है
मगर सालकर मुस्कराना नया है

न मेरे लिए दुःख सहना नया कुछ
मगर गर्व से सर झुकाना नया है

लगी चोट तो तिलमिलाना सहज, पर
मगन चोट पर चोट खाना नया है

अलक का हुआ अपसरण पद्म मुख से
मगर दृष्टि ऊपर न जाना नया है

विपति नाप है एक प्रगति नापने की
विपति में प्रगति का न पाना नया है

नये को नये ने पुराना बनाया
नयों की सरणि में पुराना नया है

: पचास :

बस्तियों के बीच, फिर भी हैं निपट सुनसान में
हम जहां बैठे सभाएं लग गयीं वीरान में

सर बहुत मारा, जगत का रूप खुल पाया नहीं
फँस गया कुछ जीभ में, कुछ आंख में, कुछ कान में

कीजिए क्या और उनको व्यर्थ क्या समझाइए
हाथ से यदि थक गये तो रम गये व्याख्यान में

ज्ञान में या ध्यान में आना न आना एक-सा
जो न मिल पाया, वही आया हमारे ध्यान में

बाढ़ का पानी चढ़ा, उतरा, कहां ठहरा, गया
हम वही हैं, मन वही था मान में अपमान में

क्या करें इस जिंदगी में दूसरी संभव नहीं
ज्ञान मुश्किल से हुआ इतना, कि हैं अज्ञान में

केंचुली समझे कि मैं हूं सांप को साधे हुए
यों बिता दी उम्र हमने पूर्ण इत्मीनान में



• इक्क्यावन •

चरण में कंटकों के लेख गति-संस्कार हैं अपने
चुभन के रागमय अँखुए कुशल कृतिकार हैं अपने
चमक समवेदना बोझिल घुटन पीड़ा कसक आंसू
धरा से व्योम तक पसरे हुए घर-बार हैं अपने
किसी के प्राण हर लेते किसी का त्राण करते हैं
नवप्रभ तीक्ष्ण शाणित शब्द ही हथियार हैं अपने
निराशा क्यों अगर सुकुमारता उत्तर न दे पाती
सुखद अनुभव कि निर्विच्छिन्न पत्राधार हैं अपने
समय का फेर इसको क्रांति कहते हैं ज़माने में
कि जो बटमार थे कल, आज पहरेदार हैं अपने
किसी को क्या पड़ी जो साथ दे मेरा मुसीबत में
चतुर हैं नींद, सपने भी बहुत होशियार हैं अपने
बसे हर सांस में अनुगीत मेरे, ज़िंदगी होकर
छुओ जो मन उसी में रुचि-भरे अंगार हैं अपने
समर्पित है तुम्हें ये अग्निगंधा रम्य रचनाएँ
तड़पना और तड़पाना तो शिष्टाचार हैं अपने

: बावन :

सूझता रहा हरा ही हरा हुए यों अंधे सावन में
न अपनी ओर दृष्टि मुड़ सकी रहे तन्मय विज्ञापन में

एक जीवन कितने व्यापार फँसे इतने अवकाश कहां
अधिक कोई क्या करता और देह के सीमित साधन में

तर्क को तर्क काटता गया हुआ जो सिद्ध असिद्ध वही
अगर सच पूछो तो हम लगे रहे केवल आच्छादन में

काठ ही मार गया उस काल अन्यथा साँसति क्यों सहते
रोक थी क्या जिह्वा पर और ख़र्च था क्या अभिवादन में

लक्ष्य में रहे एकता भले प्रयोजन में तो अंतर है
जुटे वे रुचि-दोहन में, और मिटे हम रुचि-उत्पादन में

एक अद्‌भुत परिवर्तन यह कि दहकता मन पानी-पानी
स्नेह-ज्योतित होकर भर गया छलकते लोचन-भाजन में

ललक आग्रह से रखने लगे हमें श्रद्धामय आंखों में
दीप-सा अपने को कर दिया समर्पित जब नीराजन में

: तिरपन :

खोजता हूं पर नहीं मालूम है क्या खो गया
कौन है रंगीन, मन-रंगीन का रंग धो गया

आंख ही में रूप-रँग की चित्रकारी थी हुई
आह सारी देह में सौंदर्य फूल चुभो गया

हैं किधर साथी, कहीं पद-चिह्न तक मिलते नहीं
बस वहीं का हो रहा, इस राह से जो-जो गया

वाह ! मेरी शक्ति ने ही धुन दिया पूरा मुझे
ऊर्मियों का संचरण संपूर्ण सिंधु बिलो गया

छानना मिट्टी, बनाना पात्र, भंडे फोड़ना
बीज उद्यमशीलता का यह रगों में बो गया

रात भर जीवन सुनाता ही रहा अपनी कथा
ज्यों लगा मैं बोलने, वह चुप हुआ, फिर सो गया

ऊबकर पैतृक मुखौटा जब हटा मैंने दिया
तो मेरा मुंह मेरी संतति का मुखौटा हो गया

: यौवन

तब लड़ाई ताज से थी अब लड़ाई ताज की
हम रहे तब भी अकेले हैं अकेले आज भी

देह है क्षण-भंग, यह अहसास पल-पल पर रहा
काज था अपना, मगर वह काज था प्रभु-काज भी

संकुचित-विस्तीर्ण का सब भेद बिल्कुल मिट गया
लग रहा था ख़त्म जीवन और उम्र दराज़ भी

प्राण देने का अभय कौशल जिन्हें मालूम था
आ गया अब प्राण लेने का उन्हें अंदाज़ भी

गंध की गांठें हवा में लग गयीं थीं उस समय
इसलिए गिरती है हम पर महमहाकर गाज भी

हंस चातक मोर कोयल सारिका शुक देखकर
भूल ही जाते हैं हम इस बाग़ में हैं बाज़ भी

लूटते जाते हैं, लेकिन हाथ भी जोड़े हुए
हाय दुस्साहस अनोखा औ ग़ज़ब की लाज भी

मुक्त, फिर उन्मुक्त, अब भयग्रस्त हैं, संत्रस्त हैं
है अराजकता चतुर्दिक और अपना राज भी

: पचपन :

भावों के विवर्तन का गोलमाल न पूछो
आंखों को दीठि लग गयी छवि-जाल न पूछो
आवृत किया परंतु अजब वेग भर दिया
अब बन गया प्रवाह वह शैवाल न पूछो
पीयूष-ग्रंथि एक हृदय नाम है जिसका
उल्लास-भरी पीर का जंजाल न पूछो
सौंदर्य और मौन ! दामिनी है विष-बुझी
तलवार से भी तेज़ है यह ढाल न पूछो
देखा था किसी ने बड़ा सम्मान मिल गया
देखा था जिसे उसका बुरा हाल न पूछो
शोणित की लहर दीप्त ध्वनि-तरंग हो गयी
कैसे भी सही चुभ गया त्रुटि-साल न पूछो
सवादियों की शोर में आवाज़ है दबी
लेकिन विवाद-स्वर हुए उत्ताल न पूछो
जेह्वा जकड़-सी दी है किसी ने ग़ज़ब, अरे
ये कान, आंख, नाक हैं वाचाल न पूछो
गतिशील हैं उठा के हमें डाल दें कहां
चल-सौहृदों के बाहु ये विशाल न पूछो
शब्दों पै उँगलियां जो रखीं तो झुलस गयीं
अनुगीत है कि दाह की टकसाल न पूछो

छप्पन

सलिल-बूँद नभ पर अघट बन गयी है
रुई फैलकर दृष्टि-पट बन गयी है

न कुछ हल, समस्या उलझती गई यों
प्रिया-केश की दीर्घ - लट बन गयी है

वहां पर दबाया, उधर कुछ भ्रमाया
यहां पर बचाने को तट बन गयी है

स्वयं में मिलाया जो जल को, तो मिट्टी
पहुंच अन्य-हाथों में घट बन गयी है

रहे देखते ही समझ में न आयी
वह फगुआ हवा कब लपट बन गयी है

ग़रीबी हटाओ ग़रीबी हटाओ
कि शोषण की यह एक रट बन गयी है

: सत्तावन :

दयाप्लावित नयन की रश्मियों को बिजलियां समझे
हमारे होश उड़ते थे मगर तुम तितलियां समझे

न कुछ उस मौन के आतंक ने आशय दिया खुलने
उधर ख़ुश थे कि ना समझे, इधर ख़ुश थे कि हां समझे

किया संपूर्ण अकुतोभय निरंतर काल-चिंतन ने
मरण दुख त्रास को दृक्सूत्र की दुर्ग्रंथियाँ समझे

अनूठी दृष्टि के बल पर अपरिमित दृश्य लहराये
मगर उस दृष्टि के बिखराव को हम इंद्रियां समझे

न भावों की विकट नरमी, विचारों की न सरगर्मी
जिन्हें संकल्प कहते थे उन्हें अब ग़लतियां समझे

वही ढांचा, वही कंधे, वही पथ है, वही जन हैं
अरे क्यों पालकी सुखपाल को अब अरथियां समझे

हुआ मन संकुचित तो तथ्य कुछ का कुछ नज़र आया
मेरे गति-सिंधु की लहरों को तुम पगडंडियां समझे

कहां ज्वाला पवन घनघोर वर्षा नौजवानी की
उसे वाणी क़लम इसको इन्हें तुम उँगलियां समझे

: अट्ठावन :

संबंध यों तो तुमने न तोड़े-मरोड़े कम
हां दोष कुछ अपना भी कि टेढ़े हैं थोड़े हम

ठोकर लगा दी हाल पूछ लीजै पैर से
अंतर पड़ा क्या हमको, हैं रस्ते के रोड़े हम

गत्वरता हदविहीन कि पदहीन कर दिया
कैसे बताओ अब कहां जाएं निगोड़े हम

नयनों के आसपास चले पक्ष्म-मार्जनी
इस चाल से कि जैसे हों कीड़े-मकोड़े हम

हा दुःख ! न हमको कहा कुछ भी बुरा-भला
वह सूत्र दिया काट जो फिरते थे जोड़े हम

बंधन से मुक्त करती है यदि मौन साधना
अभिव्यक्ति-मूढ कहिए गये क्यों न छोड़े हम

चढ़ जाएंगे गगन पै फुहारों को पकड़के
इस आस में खाते रहे बिजली के कोड़े हम

सरपट वह दौड़ चौकड़ी भरना हवा हुआ
संसद में फंस के बन गये सर्कस के घोड़े हम



उनसठ :

स्वर की है परख मुझको तुम बात तो करने दो
आवाज़ सुधा-स्रावी मर जाय जो मरने दो

अपनी असृक् कहानी धीरे से सुनाऊंगा
अपने को तुम सँभालो कुछ मुझको सँवरने दो

मधुमक्खियां विपत्ति की डसकर जो मुझे देतीं
शब्दों के शहद-छत्ते धीरे उन्हें झरने दो

मधुकर को गंधवीथी अमराइयां पिकी को
विचरें जो गोबरों में गुबैरले विचरने दो

यह चोट प्राप्त क्षण है, बीता जो क्षण वह व्रण है
इस चोट को लगने दो उस घाव को भरने दो

दुनिया के अँधेरों की सरगम मचल उठेगी
बस अग्नि की घटाएं सूने में घहरने दो

अनुगीत यही दर्पण बन जाएंगे तुम्हारे
जो मुझ पै बीतती है अपने पै गुज़रने दो

साठ

किसकी हिम्मत, न तुम्हें वहम ने टोका होगा
प्रीति ने अहं की निश्चित है कि रोका होगा

दृष्टि संपूर्ण पड़े यदि तो पार हो जाए
क्यों ये तड़पन है कनखियों से विलोका होगा

ये अजब दाह जलाती है तृप्ति बरसाती
आंख का नीर इसी दाह ने सोखा होगा

देखने से हुए बरबाद तुम्हारे यों तो
तुम न देखोगे तो संहार अनोखा होगा

इतने धोखे जो मिले तब हूं बना ऐसा मैं
अब जो धोखा न मिले मौत का धोखा होगा

त्याग के भाव में वितरण की समस्या क्या है
गाय का दूध तो बछड़े ने ही चोखा होगा

चित्त तो मेरा लिया खींच चितेरे ने ही
ये जो धड़कन है उसी चित्त का खोखा होगा

घुप्प जीवन के अँधेरे में चमक-सी आयी
खुल रहा याद का रंगीन झरोखा होगा



: इसकठ :

संकट-निपात एक नया गुल खिला गया
झंझा-प्रवेग आग में लहरें उठा गया
संवेदना सभी की नहीं एक-सी होती
पत्थर को क्या पता कि पैर चोट खा गया
दुख के कठोर स्पर्श की प्रेमिल प्रतीति थी
बालक को प्रथम बार कोई गुदगुदा गया
मस्ती में आंख खुल गयी ऐसा लगा मुझे
सपने में नींद-मग्न को सपना जगा गया
शब्दों की भनभनाहटें अर्थों के चहचहे
कानों में एक. एक चेतना पै छा गया
ऐसी वो हवा बांध दी फूलों के रंग ने
फल खोजने वाला वहां मूरख कहा गया
ध्वनि के अलात चक्र ज़लावर्त नज़र के
यह कौन मेरी भस्म ठिकाने लगा गया
किरणों ने अँधेरे में सफ़ेदी-सी फेर दी
कोई विचार कल्पना को जगमगा गया
क्या प्रेम, अरे द्वेष का उत्साह देखिए
छोड़ी न कसर साथ अंत तक निभा गया

बासठ

सौंदर्य सही लेकिन उसने भी अति उठायी
किस ख़ूबसूरती से करता चला सफ़ाई
संवाद की कोई भी जब राह नहीं निकली
आड़े तुरंत आयी पैरों गयी बिवाई
जीवन है तभी जब तक संचार है स्वप्नों का
सांसें तो गयीं आयीं पर क्या हुई कमाई
मन हाथ से निकलकर हो ही गया पराया
जीवन न अर्थ समझा पर हमको अक़्ल आयी
साधन मिले बहुत से फल किंतु कुछ न निकला
चिनगी न उठी, रगड़ी गीली दियासलाई
कुछ बन ही गया बानक जो सामना हुआ यों
ऐसा लगा किसी ने ज्यों आरसी दिखायी
धीरज-विराग, अनुभव-स्वाध्याय, प्रेम-संयम
किस ज्योति ने गरमाये, भाई से लड़ा भाई
अपनी लुटी अवस्था निज-भाव बन चुकी थी
पूछा कि लुटे कैसे रग-रग पुनः दुखायी
है डूबने-पसरने में भेद बड़ा फिर भी
अंतर न मरण में कुछ हो कूप या कि खाई
बहती नदी दिखाई तो दे रही है मुझको
वह दृष्टि दो कि पुल भी बहता पड़े दिखायी

• तिरसठ :

हर सांस में उतरकर हमने हृदय उबारे
बादल की तरह दौड़े जब भी गये पुकारे

तुमको न दृष्टि आते विपरीत कुछ नहीं है
आंखों ने कहां देखे आंखों के सुघर तारे

ऐसी सहायता भी किसको नसीब होगी
तेज़ी से लहर आयी जब हम लगे किनारे

जीवन की पीर जो थी जिस पीर में जीवन था
अब कौन है कि आकर वह पीर फिर उभारे

र दृष्टि इंद्रधनुषी हर दृश्य चमचमाता
बुद्धि की किरण के रंगीन ये फुहारे

रुचि-मार्ग भिन्न हैं तो उपलब्धि एक क्यों हो
माना कि हम न जीते माना कि तुम न हारे

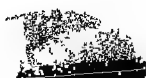
ुम देख रहे बैठे जमती है सभा कैसे
सूने रहे निमंत्रण जब तक न तुम पधारे

धुरपद कहां सुनाएं है भीड़ दादुरों की
मुद्दत हुई कि चातक कलहंस भी सिधारे

निस्तेज़ धड़कनों के स्वर लड़खड़ा रहे हैं
कब तक भला जिओगे अख़बार के सहारे

: चौंसठ :

दूर उड़ती है उड़े कौन लखे हरजाई
आंख में पड़ने से ही किरकिरी है दुखदाई
कौन पूछे थी हरी लाल कि मिट्टी काली
सिर्फ़ चर्चा कि नंदलाल ने ही खुद खाई
उन्मथित मन से उछलकर तो न निकला क्या-क्या
वस्तु सामर्थ्य के अनुसार ही लेकिन पायी
रीरियाती है सड़े आम में सूँड़ी जैसे
देह इच्छा ने कुरेदी तो कभी सहराई
राख की गोद में थी शांति से छिपकर बैठी
आग वह चक्षु-कुतूहल से गयी उकसाई
रूप अनगिन हैं दुख के, कितने गिनाएं रोएं
वक़्त जागा अभी तो ले रहा है अँगड़ाई
डंक कल मारे परिस्थिति ने थे बनकर बीछी
आज डसकर प्रसन्न नागिन-सी लहराई
सूखकर वृक्ष से पत्ते गिरे कोपल फूटी
फूल-अनु-फूल फड़कती हुई क्या ऋतु आयी



: पैंसठ :

निर्जीव कर दिया मन दुर्लभ प्रहार देकर
अब बुद्धि किधर जाए घायल विचार लेकर
उपदेश में पृथक्ता की गंध आ रही है
बिगड़ों के पास आये तुम भी सुधार लेकर
पल-पल पता लगाते औरों की धारणा क्या
इस तौर जी रहे हैं जीवन उधार लेकर
सब छोड़ यथावत् ही चुपचाप गये, जैसे
जाए हवा का झोंका सब सार-सार लेकर
निर्मल की झलक मिलती आधार मलिन में ही
मन चित्र बनाता है गुण का गुबार लेकर
दर्शन की प्यास भी है अरमान भी लाखों हैं
यों सूर्य को देखेंगे हम अंधकार लेकर
तुम-सा न और कोई, हर एक तुम्हीं-सा है
समता मिली मुझे यह ममता अपार लेकर
बाधक विषम धरा जो पैरों को छीलती थी
रंगीन बन रही है सपने हजार लेकर
कारण अगर बताऊं तो गर्व का यही है
जीवन निखर गया है कण मात्र प्यार लेकर

[illegible] का पहाड़ा तुमने

[illegible] को झाड़ा तुमने

[illegible] के स्वन, क्या लेना

[illegible] नगाड़ा तुमने

[illegible] दिया झटका ऐसा

[illegible] को उखाड़ा तुमने

[illegible] अन्न तुम्हारा, यद्यपि

[illegible] खलिहान ही माड़ा तुमने

[illegible] तुलसी को पांच घूंट चढ़ाया पानी

[illegible] को [illegible] के पछाड़ा तुमने

[illegible] में [illegible] अनिश्चित दुनिया

[illegible] कहीं का नहीं, किंतु बिगाड़ा तुमने

• सरसठ

यह अंधेरे की जगमगी क्या है
आग में आग-सी लगी क्या है
बंद हैं नेत्र और मन पुलके
लुट रहे हैं मगर ठगी क्या है
प्रश्न हल, प्रश्न फिर नये हल से
तीव्रमति और मंदधी क्या है
आंख से शील का हटा पर्दा
फिर ये कंचुक तनी तगी क्या है
चाहते जिसको बेख़बर है वह
मृत्यु क्या चीज़ ज़िंदगी क्या है
वह परिस्थिति थी अब दशा है यह
क्या परायी है औ सगी क्या है
स्वप्न-चक्रों ने काट दी गर्दन
कल्पना शोख़ विष-पगी क्या है
मन मगन, रोम-रोम है बजता
रागिनी सुप्त फिर जगी क्या है
चित्रपट की चहल-पहल नभ में
रश्मि रुचि में रँगी-रँगी क्या है
इसको कहते हैं चाल है बदली
थी कभी क्या, अभी-अभी क्या है
आत्मरति मान भी अगर हम लें
ये नुमाइश की हलबली क्या है
सर कहीं पर भी जब नहीं झुकता
प्रार्थना क्या है बंदगी क्या है

अड़सठ

घटना को यों मरोड़ा जब संशय धुआंधार ने
संताप लेके मोड़ा तब निश्चय दुर्निवार ने

सोचा था अग्रगामिनि कुछ ज्योति बिखेरेगी
पथ पर न कुछ भी छोड़ा उस दृष्टि डग्गामार ने

संकेत स्नेह के या आफ़त के निमंत्रण थे
बहलाया फिर झिंझोड़ा मधुपर्क अत्याचार ने

प्यासे को तृप्ति पूरी देता है कौन, फिर भी
रस कंठ में निचोड़ा कुछ धर्म धक्कामार ने

हम मिट गये तो समझे बेबाक़ हुए अब तो
पिछला हिसाब जोड़ा उस मर्म लेखाकार ने

लावण्य-इंद्रियोत्सव की महकती धरा को
बस बार-बार गोड़ा संसार के धिक्कार ने

जो भाव किलकते थे खंडहर में दब चुके हैं
अपनों का शीश फोड़ा औरों के जीर्णोद्धार ने

उनहत्तर

न उकसा एक भी अंकुर बराबर खेत ही जोते
निकलते फूल, मिलते इष्ट फल भी, बीज यदि बोते

दशा तो दे गयी वह नींद स्वप्नों से भरी थी जो
अँधेरा ही सही, रहते मगन, रहते अगर सोते

उजाले के चमकते आवरण की देन मत पूछो
अभी इसने अभी उसने हमें लूटा कि हैं रोते

अकारण एक हंगामा मचा यह बात सच, वर्ना
हमारे पास था ही क्या सुसंचित, जिसको हम खोते

चमक आंखें चुराकर छिप गयी, हम धैर्य तज भटके
जो था उसको नहीं देखा, न था उसको रहे ढोते

पसारा हमने फैलाया था, अपने आप ही सिमटा
बची बस शेष यह रोकड़ कि हम ये थे कि हम वो थे

कणों की मार से बेकल, क्षणों की दाब से बेदम
न घटना यों अगर घटती तो हम कुछ और ही होते

सत्तर

बना है कुछ न कुछ संयोग कहते फिर भी अनबन है
भला संयोग कैसे हो इधर मन है, उधर तन है

न व्याख्या प्रेम की संभव, न संभव वैर की भाषा
नजर या सांस का बस मांस से मृदु तीव्र घर्षण है

चकित-से कुछ जगे सोचा किधर रपटे कहां टूटे
हँसे मन-बुद्धि, मूरख यह न टूटन है न फिसलन है

मचलकर हो गया ओझल, उठा अकड़ा शनैः उतरा
बची है हूक अंतस में, न बचपन है न यौवन है

सभी ने, झूलकर इस उस तरफ़ रखना क़दम देखा
न समझा किंतु कोई भी, ये विचरण है कि विचलन है

सही, है हर पदारथ की तरह ध्वनि एक धन की भी
मगर झगड़ा मचा पहचान का ठनठन कि खनखन है

जिसकी तरफ़ झुके हम [illegible]
हम जितना पिघलते हैं, वह उतना [illegible]
संदेह [illegible] में क्या [illegible]
खाई खुदी कहीं पर, [illegible]
जीवन सचेत रखने को [illegible]
हम चाहते हृदय पर, वह शीश को [illegible]
इस तौर-तरीक़े में [illegible]
उससे न कुछ बिगड़ता कुछ [illegible] न बनता है
कुछ जागकर बहुत कुछ सीखा है स्वप्न में भी
गंभीर नींद लेकिन अनुभव की सघनता है
कब शीश पर उठा ले, कब फेंक दे धरा पर
चुप रहिए मत उलझिए, जनता है ये जनता है

बहत्तर

काम बन जाय कि समझाइए हिलमिल उसको
हम तो बस बैठ रहे देख के दुर्मिल उसको

चीखना व्यर्थ हुआ हाय कि सिमसिम खुल जा
भाग्य-हित मेरे बनाया गया सिल उसको

प्यार क्या चीज़ नहीं ज्ञात है हमको लेकिन
अग्नि-शर सिद्ध हुआ, कहते थे हम तिल उसको

काट वह विष की कटाक्षों में कहां से भर दी
बात मीठी थी प्रमाणित किया प्रेमिल उसको

शीश की मार ने तम-अद्रि ढहाये इतने
ज्योति का पुंज भी अब लगता है बोझिल उसको

जो दिखायी न पड़ा था, वह दिखायी देता
देखता था जिसे, अब देखना मुश्किल उसको

तिहत्तर :

हर ओर एक धुआं-सा समझते हो जिसे तुम
है आग का तमाशा समझते हो जिसे तुम

रोशन है एक तन तो एक मन है चहकता
कोई, बुझा-बुझा-सा समझते हो जिसे तुम

बस फड़फड़ा के पंख कल्पना भी रह गयी
हा लाग का वह लासा समझते हो जिसे तुम

होते हैं धरामृत से सभी तृप्त मगर क्यों
प्यासा ही रहा प्यासा समझते हो जिसे तुम

कम हो न एक बूंद मगर खूब रस पियो
अच्छा रहा दिलासा समझते हो जिसे तुम

गर्दन कराह की तो मरोड़ी थी हमीं ने
हालांकि कष्ट ख़ासा समझते हो जिसे तुम

मन की न कथा ख़त्म हो आकल्प जो, उसका
आंखों में है ख़ुलासा समझते हो जिसे तुम

मैं सन्नवाक् और सभी सोच रहे हैं
है कौन-सी वह भाषा समझते हो जिसे तुम

कैसा हिसाब, ब्याज का न अंत मिल रहा
या ऋण लिया ज़रा-सा समझते हो जिसे तुम

चौहत्तर

मगन हो तौलते हैं कोयला पर चित्त धन पर है
समझिए आदमी का रूप-दर्शन स्वर्ण कण पर है

अगर है न्याय, बोले, हाथ काटें हम कि मुंह कुचलें
वसन का अपहरण है जब, चढ़ाई जब अशन पर है

मिटाना भूख हर ढब से प्रथम कर्तव्य था अपना
मिली फ़ुर्सत न तन से अब लड़ाई आभरण पर है

नज़र उस ओर, किसने चोट की, कैसे पता चलता
अदर्शन धारणा अवकाश सब निर्भर व्यसन पर है

न उर में अँट रहा है रूप, आयी बाढ़ आंखों में
खड़े हैं व्यस्त उत्सुक कान, कुछ आफ़त वचन पर है

विरोधी भावना-प्रतिवाद में तो मौन ही अच्छा
कहूं किससे कि मेरा जन्म भी मेरे निधन पर है

: पचहत्तर

वह कल्पना जगी कि नयी सांस-सी आई
उत्साह धैर्य दम को मेरे जांचती आई

मुस्कान पंगु, प्राण कर्त्तरी थी उसकी झल
जो यत्न से निज-पर का भरम छांटती आयी

अंजन वह सिद्ध जिससे कि आंजी गयी नज़र
जो रूप-रंग टोह के, मन आंकती आई

रफ़्तार की गर्मी रही मंज़िल की हवा तर
आयी तो जवानी परंतु खांसती आयी

हा रूप जहाँ प्रीति चमकती है किलककर
हर रश्मि तृप्त-ज्योति वहां नाचती आयी

लड़ना न झगड़ना कि थी जीवन की रगड़ वह
रह-रह के जो व्यक्तित्व मेरा मांजती आयी

छिहत्तर

बदल जाना प्रकृति जिसकी उसे अपना बनाये कौन
निरावृत जो करे हर एक को उससे लजाये कौन

जो दुख आया हुआ परिचित, अगर रह जाये तो अच्छा
नया दुख, फिर नया परिचय, नयी झंझट उठाये कौन

निरखिए बचपना मन का न अपने आप सोता है
यहां मैं व्यस्त, घंटों बैठ इसको थपथपाये कौन

चमक विक्षेप की यदि हो, न हो रस-मग्नता, फिर तो
विमुख-परिवेश से होकर प्रताड़ित, गुनगुनाये कौन

क्षणिक संयोग, रूपाकृति मगर छायी है आंखों में
घटित है लाभ अथवा हानि, इसमें सर खपाये कौन

बड़ी घटना असर थोड़ा कि छोटी बात है भारी
अजब गति जिंदगी की, कौन रोये मुस्कराये कौन

सँभालेगा कहां तक तन दहकती चेतना किरणें
रुई ने ख़ुद लपेटी आग अब इसको बचाए कौन

सँदेसे मिल रहे क्षण-क्षण कमर कसकर सजग रहिए
नहीं मालूम कब चलना पड़े, बिस्तर बिछाये कौन

: सत्तहत्तर

गये मिट भेद, किसको दुष्टजन किसको सुजन कहिए
सभी के कर्म हैं बस कर्म किसको दुर्व्यसन कहिए

ईं गुटबंदियां आतंक हिंसा द्वेष की इतनी
नयी भाषा बनी, अब टूटने को संगठन कहिए

लगाये घाव में टांके, रहा नटसाल व्रण में ही
चिकित्सा-दक्षता का एक यह अद्भुत जतन कहिए

मुझे मथकर छिपी है मूर्ति मुझमें एक रुचि-रांची
भले ही भावना-भावित उसे अन्तःकरण कहिए

अनुग्रहहीनता शोभा, निपट औदास्य बल भारी
किसी को मारना सौंदर्य का ही बांकपन कहिए

कहां के मूल्य, क्या आदर्श जब आलम मुखर भय का
जहां हर सांस घुटती हो, वहां जीवन मरण कहिए

मिला यदि प्यार लहराया, मिली दुतकार मुरझाया
मनुज है वृक्ष, उसकी ज़िंदगी पर्यावरण कहिए

उपेक्षापूर्ण चितवन या अकड़ती चाल क्या बोले
प्रसाधन-न्यस्त मुख-पद-केश को मेरा नमन कहिए

सुना था जो वही देखा, पृथक् माध्यम मिले हैं यों
न अंतर कुछ, कि दर्शन को श्रवण का उद्धरण कहिए

भुलाया याद ने ऐसा न बाक़ी भूल जाना भी
अजब थी याद जिसको विस्मरण का विस्मरण कहिए

: अठहत्तर

विदूषक कुछ भले आजायें बे-परकी उड़ाने को
न आयेगा मगर यह बोझ कोई भी उठाने को

जिधर अधिकार का सूरज उधर मुड़ जायगी वह भी
बुरा मैं क्यों कहूं सूरजमुखी के मुंह चुराने को

तमाशा बन गया है धार पर तलवार की चलना
लगे हैं कुछ गिराने को, खड़े कुछ आज़माने को

न मन की बात, डर है यह कि तन काला न पड़ जाए
अरे उकसा दिया क्यों चंद्रकिरणों में नहाने को

निबल-बल का विनिर्णय, है क्रमाधारित अचर-चर में
सजग हर एक है बस दूसरे के धर दबाने को

परिस्थिति को कहां फ़ुर्सत किसी को दुःख या सुख दे
वो बेचारी विवश आयी खड़ी लाचार जाने को



उन्यासी :

आर्त मौन, उजाड़ दृढ़, जीवन चपल गत्वर कहां
ढूंढती दिन-रात चिंता हाय मेरा घर कहां

शील-भंजन, वंचना, दुख-दर्द की फ़सलें बढ़ीं
लहलहातीं-झूमतीं, यह भूमि अब बंजर कहां

जो हवा कल तक चतुर्दिक गंध फैलाती रही
आज लपटें धकधकाने में भी उसको डर कहां

घोर युग-मंथन, गये बँट भोग, विष लहरा उठा
सुर-असुर संग्रह-निरत, जग जल रहा, शंकर कहां

शीश पर मेरे खड़े होकर छुओ आकाश को
सामने प्रासाद ही हैं, नीव के पत्थर कहां

धूल में मिलकर प्रणय-संवेग से बिफरी, उड़ी
ऐ पवन ! अब ढेर हैं खर-फूस के, छप्पर कहां

देह क्षत-विक्षत, पता पथ का न, पग-पग ठोकरें
हर तरफ़ बस प्रश्न के जंगल खड़े, उत्तर कहां

: अस्सी :

संभव नहीं मुझ पर कोई तोहमत न धर सके
संतोष कि तुम आज तो मन अपना भर सके

औरों को डराते हैं कि डरते हैं और से
किसका है डर उसे कि जो अपने से डर सके

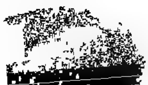
बंधन है नाम किसका, मुक्ति कहते हैं इसे
चाहे तभी जीने लगे जब चाहे मर सके

दुर्भाग्य कि तू मन में हमारे न आ सका
दुर्गति कि मन में तेरे भी हम घर न कर सके

गति क्या प्रशंसनीय अगर रोग बन गयी
मंज़िल पै पहुंचकर भी न पल भर ठहर सके

जीवन अरे इतनी तो उसे छूट दे कि वो
अपना समझ के तुझको, कभी तो बिफर सके

सौंदर्य क्या है वह, कि प्रेम देख ले जिसे
क्या प्रेम, कि सौंदर्य के दर्शन न कर सके



: इक्यासी :

हलचल के पंख झड़ रहे चलचल की बात है
चेहरा खिला हुआ था जो वह कल की बात है

फाँसी का उपक्रम है कि बाँहें हैं प्यार की
गंतव्य का सवाल है, संबल की बात है

धारा में कूदना ही नहीं पार पहुँचना
उत्साह के प्रसंग में कसबल की बात है

सुख-ग्रस्त भी हैं और हैं कुछ दुःख-मग्न भी
कुछ दृष्टि का प्रभाव है, आँचल की बात है

अति स्वच्छ कलेवर है, विकट मौन, पकड़ भी
मन का न सिर्फ़ खेल है, जल-थल की बात है

नीहार छिन्न हो-न-हो, उजला जगत खुला
आंखों का क्या महत्त्व, ये काजल की बात है

है द्वार, रहे द्वार, अगर पट हैं, पट रहें
स्वागत व बहिष्कार तो साँकल की बात है

• बयासी •

था दोष तो अपना मगर सिर और के मढ़ते रहे
गति की ज़रूरत थी जहां पर उस जगह अड़ते रहे

सोचा न, लेकिन कह दिया, जो कुछ कहा, वह कब किया
अपनी नज़र में कम हुए, हां भाव तो बढ़ते रहे

उपकार क्या माने, न चलती हैं, न करतीं बात ही
माना कि पत्थर काटकर तुम सूरतें गढ़ते रहे

निर्भ्रांत स्वर-माधुर्य से देदीप्यमान मनःस्थली
आलाप-नभ में कल्पना के हौसले झड़ते रहे

वह रूप जिसके स्पर्श से हर शब्द वीणा-सा बजा
वादक हतप्रभ थे कि उतरे तार ख़ुद चढ़ते रहे

एकांत में खिलकर गिरे, वे फूल देखे ही नही
देखे वही जो मूर्तियों के पांव पर लड़ते रहे

आच्छन्न बिंब-विमुष्ट-मति संलग्न रिक्त प्रतीक मे
संदेश-सत्त्व-विहीन लड़ियां शब्द की जड़ते रहे

वे बीज ही होकर सफल तरु सामने दृढ़तर खड़े
जो आपके सौजन्य से मिटते रहे, सड़ते रहे

निश्चित न था किसकी कमी, झिड़की सही, कुछ तो मिला
खुद को कभी बांचा, कभी उस पत्र को पढ़ते रहे

थी दृष्टि मंज़िल पर, अतः वह तो मिली, पर क्या कहें
बीती उमर, पथ में हज़ारों मोड़ ही पड़ते रहे

: तिरासी :

जिन पर कि था भरोसा वे तो गये कभी के
हैं शेष बच रहे जो, जंजाल हुए जी के

मतलब किसे कि देखे यह रक्त कि कुंकुम है
बस पूज्य बन रहे हैं सब लाल-लाल टीके

दो बोल तक न डाले झोली में किसी मुख ने
किस-किस जगह न रोये, किस-किस जगह न चीखे

ज्यों ही वो दृष्टि अपनी पहचान में आयी है
स्वयमेव जल उठे हैं पथ-पथ में दिये घी के

है खून की जगह पर अब रोशनी नसों में
उल्लास राग उत्सव सब रंग पड़े फीके

श्रद्धा न थी न अनुभव अतएव दूर फेंके
कीड़े समझ-समझकर दाने इलायची के

वात्सल्य प्रेम ममता ये शब्द लिए थोथे
हैं ढूंढ़ते पिता को बच्चे परखनली के

: चौरासी :

मेरा दुर्भाग्य तो क्या देता सहारा मुझको
मेरी मुस्कान ! लगा तूने उबारा मुझको

और की क्या, स्वयं अस्तित्व न जाना अपना
तब हुआ भान कि जब सबने नकारा मुझको

मार डालूं कि मरूं, भाग के कूदूं उछलूं
मैं रहूं बस यह दिखायी दिया चारा मुझको

देह-रँग-देश-धरम-जाति के तीखे-तिरछे
धन्य हैं पाश, कि टुकड़ों में सँवारा मुझको

प्राप्त कस्तूरी, तो पैरों में सनीचर चमका
गंध-विक्षिप्तों ने झट घेर के मारा मुझको

यह सुनिश्चित है कि हलचल हुई होगी कुछ में
क्यों हुआ मरने का उत्साह दुबारा मुझको

बैठना-जाना भी जिसका बु रा आना-उठना
अधखुली आंख वह, सीने में उतारा मुझको

ढेर होकर था पड़ा भूमि को दूषित करता
सूर्य की किरणों ने बेलौस बुहारा मुझको

पचासी :

दृष्टि चमका दी, नयन उज्ज्वल बनाये, और भीतर तक उजाला कर दिया
आदमी था शून्य, भरकर ज्योति-रस, सौंदर्य ने रुतबा दोबाला कर दिया

दीर्घ सन्नाटा मसानी शांति होती, बस उदासी का तिमिर रहता घना
दुख न होता कौन किससे बात करता, दुःख जीवन का मसाला कर दिया

दर्द था निस्सीम, मैं रोता तड़पता, सैकड़ों आये, यहां कुछ क्षण रुके
'जानते हैं हम दवा', वादा किया यों, और फिर हीला-हवाला कर दिया

दो क़दम चलकर गिरा, फिर उठ न पाया, हर तरफ़ से ध्वंस, मैं बेबस हुआ
ले लिए अधिकार सारे ख़ुद किसी ने, और मुझको घर-निकाला कर दिया

चिलचिलाते चुंबनों के स्वर्ण सिक्के, मौन पथ पर खनखनाकर जब गिरे
भावना ने कान ऐंठे कल्पना के, वंचनालय धर्मशाला कर दिया

स्वप्न धुंधुआते, सुलगती मौन कुंठा, तीव्र इच्छा शुष्क मूर्च्छित थी पड़ी
प्राण विद्युत् ने सभी को स्पर्श करके ज़िंदगी को दीपमाला कर दिया

: छियासी

बोल फूटा तो ये फूटा बहुत आयास के साथ
कुछ तो निर्माण हुआ होगा मेरे नाश के साथ

'हमसे संपर्क न रखिए' बड़ा मासूम कथन
छेड़खानी तो चलेगी नहीं इतिहास के साथ

वे कहां दिन कि थी जब सांस चहकती सरगम
अब तो ये प्राण उड़े जाते हैं उच्छ्वास के साथ

हाथ आया कि बराबर हुआ वह सब छिनकर
जी धड़क जाता है संत्रास में हर ग्रास के साथ

जीभ निःशब्द मगर कान हुए हैं रुचिधर
आंख ने बांध लिया खुद को सतत प्यास के साथ

अश्रु ये भी हैं कौन रंग चढ़ाया इन पर
माह-फागुन की झलक मिलती है मधुमास के साथ

फैल जाना कि धधकना कि सिमटना जलकर
मैंने क्या-क्या नहीं झेला पवन उनचास के साथ

भाव-दर-भाव हैं मुझमें, मैं हूं अंतर-अंतर
भूमि पर पैर, मगर चलता हूं आकाश के साथ

· सत्तासी ·

शक्ति-कौशल युक्त हूं लाचार बह सकता नहीं
कष्ट यह, जो जानता सर्वत्र कह सकता नहीं

हड्डियों के साथ मेरा खून का रिश्ता कड़ा
चोट किंतु उधार की, यह दुर्ग ढह सकता नहीं

आंख की आदत दुखद, पर लाभ होता इसलिए
खट रहा हूं, अन्यथा मैं मार सह सकता नहीं

है बुरा अवरोध मल का, और खसना भी बुरा
मृत्यु या जीवन विमलता में तो रह सकता नहीं

हाथ-मन के बीच अरबों कोस की हैं दूरियां
उड़ भले ही जाय कोई, व्योम गह सकता नहीं

चर-अचर लाखों खिलौनों की तरह छिटके पड़े
शांतिमय मृदु गोद बिन मन-शिशु उमह सकता नहीं

होश मुझमें खोजना है जागना बेहोश का
हो न यदि सौंदर्य-मद मैं रंच लह सकता नहीं

अट्ठासी

पूर्णता-हित छटपटाते भाग हम
भग्नस्वर भटके हुए-से राग हम

उस चरण-ध्वनि के सहज उर-स्राव में
मग्न विस्मृत रोमहर्षक लाग हम

है तुम्हारी नींद सुख-निश्चिंतता
व्यर्थ आशाकुल रहे हैं जाग हम

प्राण के अन्तार्थ-घर्षण-क्षोभ से
काल-जलनिधि-बीच तिरते झाग हम

इष्ट-निष्ठा की परीक्षा ही सही
किस उपेक्षा के प्रतीक्षा-याग हम

अग्नि थे पहले गये बन क्षार हैं
क्षार थे पहले हुए अब आग हम

नवासी

झट बारंबार बार उमड़ आते, लेकिन ये आंसू हैं खारे
ुछ देर समय की ज्वाला में तपने दे और इन्हें प्यारे

नज़रे हैं तेज़ मर्मभेदी, आलंबन अन्य तलाश करो
आश्रय किसके बन सकते हम खुद ही फिरते मारे मारे

जीवन जाना-पहचाना अभिलाषाएं सब इस झोली में
कंधे पर अपना घर लादे कल चल देंगे हम बंजारे

ं हाल अजब जिनको देखो उपदेशों के भंडारी हैं
औरों को चुप करते लेकिन ख़ुद रोते चलते बेचारे

इतना तो लाभ अवश्य हुआ, बरसों का संचित मैल धुला
जो नयन श्वेत श्यामाभ रहे, अब लगते कुछ-कुछ रतनारे

ुख दैन्य निराशा के कुंठित करतब अंतिम सांसें गिनते
ुसकानों का यह विद्यु-वाण कर देता है वारे-न्यारे

किरणें यद्यपि दो चार मगर उनके दम-ख़म का क्या कहना
उड़ता जाता प्रालेय और छँटते जाते हैं अँधियारे

• नब्बे

इस अँधेरे में भी हम कुछ ज्योति-कण पाते गये
हर बुझा मृत शब्द तैजस ओठ दहकाते गये

चीख़कर जग ने कहा, 'कर प्रार्थना, हो जा निडर'
हम न समझे कुछ, समझ में सब कथन आते गये

बाद में देखा कि थी पौरुष-चरण में मोच वह
हम उसे संकट समझकर सबसे अनखाते गये

माँगकर मधुमास लाये भी अगर तो क्या हुआ
आ गये संपर्क में जो फूल मुरझाते गये

तुम अकेले, थे तुम्हारे पार्श्वगत तब सिर्फ़ हम
बीच में आते गये जो, हमको खिसकाते गये

थी अचलता उस तरफ़, था शीश ऊंचा इस तरफ़
देखकर हिम्मत मेरी सिर सबके चकराते गये

भीड़ के धक्के, विकर्षण बुद्धि का शतपर्वपन
हाशिये पर सब मेरे व्यक्तित्व को लाते गये

दृष्टिपथ में वस्तुएं आना न था अपराध कुछ
यह हुई ग़लती कि हम उन सबसे बतियाते गये

• इक्यानबे :

आकर मिली भली कि बुरी जो थी घर गयी
पर वह विफलता सिर पै मेरे हाथ धर गयी

तू धन्य ओ प्रचार की बांधी हुई हवा
धन-मान-कीर्ति-पूर्ण उचक्कों को कर गयी

संकल्प ध्वस्त, घुट गये संदेश भी, लेकिन
मन-पद्म की सुगंध हर तरफ़ बिखर गई

हम वक्र कि थी वक्र प्रभा, इसलिए तम था
सीधा हुआ जो सूर्य तो छाया किधर गयी

भन-भन थी बंद, पंख झटकना भी झट रुका
मधुमक्षिका ज्यों बैठ किसी कंज पर गयी

लोचन चमक-मुखर, अधर भी आबदार क्या
हृद्‌गुप्त बिज्जु की शिरा मुख पर उछर गयी

ऐसी मिठास तो कभी अनुभव में न आयी
मन आम को श्यामा शुकी निश्चित कुतर गयी

• बानवे •

लग रहा है कि थक गया हूं मैं
फिर भी पल-पल नया-नया हूं मैं
चंचला-सी चमक उठी विपदा
साधना ने कहा 'बया हूं मैं'
रुद्ररोदन बिसूरना अपना
जग-विभूषण है और क्या हूं मैं
ढूंढ़ते सब मगर नहीं पाते
लापता मन का वह पता हूं मैं।
देव दानव न हैं अलग मुझसे
क्रूर हिंसा द्रवित दया हूं मैं
खोज-अनुरक्त खो जहां जाते
ऐसी मंज़िल का रास्ता हूं मैं
जितना नोचा गया बढ़ा उतना
दूब-सा नम्र बेहया हूं मैं

•

तिरानबे

निर्मूल्य या अमूल्य, लगा दाम नहीं है
अच्छा है कि व्यक्तित्व का नीलाम नहीं है

मेहनत है हाड़तोड़, गलाकाट होड़ भी
पलभर कहीं मनुष्य को आराम नहीं है

हर जीभ निरंकुश, हरेक हाथ है खुला
आज़ाद सब, किसी पै रोक-थाम नहीं है

पंजे विषाक्त सख़्त कसावट में गुप्त हैं
है बात वही किंतु सरेआम नहीं है

बेसुध हुए हैं एक पंखड़ी के स्पर्श से
संपूर्ण सरोरुह से उन्हें काम नहीं है

संकीर्णता के फंद ने दम घोंट ही दिया
फैलूं कहां किधर कि टीम-टाम नहीं है

छवि के विराम-गृह तो ठहरने को बहुत हैं
किस रूप पर रुकूं कि अभय-धाम नहीं है

ये वस्त्र कौन कम कि नाम-बोझ लाद लूं
हूं भार-मुक्त, क्योंकि ताम-झाम नहीं है

क्या धान जवासे को दिलासा दिलाइए
वर्षा यहां नहीं है वहां घाम नहीं है

चौरानबे :

शून्य आंखों में सहज जब हैं समाती आंखें
सांझ-सी फूलती गाती हैं प्रभाती आंखें

एक से दो, रहें दो चार, दुर्निवार सदा
नीति-भूलों को सदाचार सिखाती आंखें

अधखुलीं किंतु करामात देखिए इनकी
किस तरह चुपके अनल-ज्वार उठाती आंखें

फिर अघटमान-मनोरथ से त्रस्त मानव के
उन्मथित भाव-जलधि को हैं थिराती आंखें

इन मछलियों में विकल सिंधु हिलोरें भरता
हर तरफ़ बिजली के झटके हुस्काती आंखें

वह तो कहिए कि कृपा करके झुक गयीं ख़ुद ही
यह असंभव था कि कुछ गुल न खिलाती आंखें

आंख से आंख मिलाने में जान का ख़तरा
उड़ती है जिंदगी जब आंख दिखाती आंखें

धन्य दर्पण कि जहां आंख मिलाना न बना
यह छटा छहरी वहां आंख लड़ाती आंखें

कश्मकश क्या कि छिपाने में जुटे हैं सब ही
फिर भी कहती हैं बहुत बात बनाती आंखें



घूरती, फिरतीं, लजाती हैं, उतरती मन में
किस चतुरता से कुशल सेंध लगाती आंखें

सूख जाती हैं, फड़कती हैं, उमड़ती, रसतीं
कितनी गतियों में नया प्यार जगाती आंखें

है न अवकाश, लिहाज़ों की भीड़ है, फिर भी
मौन हृदयों से बड़ी बात कराती आंखें

सख़्त संगीन, उन्हें दर्द से प्रयोजन क्या
ऐसी आंखों को भी है नीर भराती आंखें

लकलकाती हैं बटोही को जिसे होश नहीं
उसको फिर लख्लखा रह-रहके सुंघाती आंखें

जीत इनकी है भुलावे में किसी का रहना
हार उसकी भी नहीं, हाथ मिलाती आंखें

है घुटन ऐसी कि उबरे नहीं दुनिया उससे
जब कि मासूम को नज़रों से गिराती आंखें

लोक-पीड़ा से गयीं फैल जो सहमी-सहमी
सत्र उन आंखों की कुछ थाह न पाती आँखें

: पंचानबे

मैं क्यों पचास सौ हज़ार लाख को देखूं
जिस आंख ने देखा तुझे उस आंख को देखूं

समदृष्टि के प्रचार का बखान करूं या
समता के बीच व्यक्त ताक-झांक को देखूं

श्रुति-चक्षु के औसाफ़ ने मिट्टी में मिलाया
चिंता हुई है अब कि बांक नाक को देखूं

सकते में मन है और लहर रूप की फड़के
विश्वास को देखूं कि तेरी साख को देखूं

इन अक्षरों के मेल से सब खेल है बिगड़ा
जो अज्ञता से मस्त उस निसांक को देखूं

हम एक दूसरे को बनाते रहे, अब तो
निर्माण जहां दृश्य है उस आंक को देखूं

वह एक झलक, जल गयी मधुऋतु की दिवाली
मैं ज्योति-दृष्टि, किस लिए उस राख को देखूं

आश्रितजनों के हौसलों का रोब प्रकट है
उस नम्र. शीलधन की बँधी धाक को देखूं

नर वह हुआ नरेश कि जिस पर नज़र पड़ी
नैवेद्य बना सूख के उस दाख को देखूं



छानबे :

व्याकुल है चाह प्यासी कोई तो मुझे डाँटे
हो भिन्न भले शैली लेकिन सनेह बाँटे
युग-चक्र की रगड़ में अक्षुण्ण कहां कोई
जूडो के प्राण छूटे कसकर कटे कराटे
आपत्ति सुंदरी ने उपकार-छाप छोड़ी
माथे पै आज उपटे, मुंह पर पड़े थे चाँटे
बातों की बद्धियां कुछ आंसू के मलिन मोती
दावा है हम इन्हीं से सबको रहेंगे साँटे
घायल-सी इंद्रियां हैं हम तार-तार बिखरे
दुनिया के कुलाहल में चुनते फिरे सन्नाटे
क्या दृश्य, देख लीजै मुर्दों की नुमाइश भी
पद-बुद्धि धन्य ! तूने व्यक्तित्व खूब छाँटे
लगता है कि चुंबक के नज़दीक जा रहा हूँ
शिथिलित खिसक रहे हैं तन-मन के कील-काँटे

: सत्तानबे

बीज है न पानी है न बाड़ है न माली है
फूल मुस्काते हैं कि फ़स्ल ही निराली है

संगिनी से स्नेहबद्ध जीवन विलोकिए
गोद में है शिशु और हाथ में कुदाली है

है प्रताप सत्ता का कि ठूंठ खड़ा ज्यों का त्यों
छाल है न रेशा है न फूल पत्ती डाली है

ठोस चमकीले स्वप्नफल टपके हैं क्यों
आसव में किरणों के जो सुगंध ढाली है

खायी थी क़सम सो निबाह उसका भी है
कीचड़ उछाला कहां, पगड़ी उछाली है

मन की है मारामार बुद्धि कहां खाली है
माल बहनोई का है साली मतवाली है

ख़ून हुआ पानी तब बानी निकली है ये
प्राणधारा मेरी, न कुवृत्ति की जुगाली है

आज जो उदास कल वे ही अपनायेंगे
है नयी परंतु सर्व-सुखद प्रणाली है

अट्ठानबे

एक ठंडी-सी सांस जी ने ली
मेरी रचना किसी सुधी ने ली

चाह किसको हुई समझने की
एक चुटकी तो यों सभी ने ली

हाथ ढीले पड़े 'अभी' के ज्यों
थाम गर्दन तभी 'कभी' ने ली

चोट वह दी कि मिट न पायेगी
ख़ुश हूं मेरी ख़बर किसी ने ली

चंग नभ तक बढ़ी उमंगों की
डोर जब हाथ में ख़ुशी ने ली

हर्ष का ऋण चुका न मरके भी
जान जिसकी थी बस उसी ने ली

बिलबिलाते थे चिलबिलाते हैं
एक करवट तो ज़िंदगी ने ली

: निन्यानबे :

संसार की नजर से बरसों रहे छिपाये
हे शब्द-ज्योति ! तूने वे मर्म सब दिखाये

आशा थी पर जगत ने कुछ भी न घास डाली
पहले तो ख़ूब झींखे, फिर झूम के झल्लाये

कोई हँसा उन्होंने भौहें ज़रा उमेठीं
हड़कंप मचा भीतर भरपूर मुस्कराये

हमने बहुत समेटीं वश में न रहीं सांसें
यद्यपि विलंब फिर भी यह कौन कम कि आये

तूफ़ान-जन्य लहरों की हैं इमारतें ये
क्यों व्यर्थ परिश्रम कर दुनिया इन्हें ढहाये

अब भी है वक़्त कोई अवलम्ब ढूंढ़ डालो
आकाश शून्य, उसमें कब तक रहोगे छाये

जो प्राण-प्रतिष्ठा का माहिर, उसे भी लाते
हां धन्यवाद तुमको प्रतिमा तो गढ़ा लाये

गद्‌गद अधीर वाणी, तुमने जो हाल पूछा
किस-किस का करें वर्णन दुख-दर्द बहुत पाये

सौ •

भावों की राशि समान मिली, क्या बात विचार नहीं मिलता
सँग-सँग उड़ते पंछी लेकिन नभ में आधार नहीं मिलता

यह बात नहीं कि कहीं जग में हमको संतोष कभी न मिला
दुख की यह बात कि जो मिलता वह बारंबार नहीं मिलता

माँगा-जाँचा रो-गाकर कुछ चरका देकर छीना-झपटा
वादे पर भी कुछ ले आये, पर प्यार उधार नहीं मिलता

तीतर-मुर्गे कीड़े-दाने चुनते कपोत भी कंकड़ियां
मोती पाते हों हंस जहां ऐसा कतवार नहीं मिलता

सांसें अब-तब के चक्कर में हैं, इनकी भी मजबूरी है
कुछ को तो रात नहीं मिलती, कुछ को भिनुसार नहीं मिलता

विश्वास-तिमिर, ममता मोटी, हर ओर भीतियां टकरातीं
आती है प्राणवायु जिससे होकर, वह द्वार नहीं मिलता

यों तो अशोक की छाया है, बैठो चाहे आराम करो
हां शोक न तब तक मिट सकता, जब तक अंगार नहीं मिलता

जीवन का स्वास्थ्य नियंत्रण में रखने को दुःख जरूरी है
यह पथ्य सुचिंतित, रोगी को मन के अनुसार नहीं मिलता

वाणी मधु घोले, नैन झुके, उत्पाती बुद्धि खड़ी सकुची
है दर्शनीय यह मानवता जब तक अधिकार नहीं मिलता

: एक सौ एक :

जग का स्वरूप क्या है इसे कौन बताये
जब अन्न पड़े पेट में तब कुछ ख़बर आये

बिजली की तरह लुकते-निकलते हैं कि जलते
शीतल जलद के अंक में कितना ठहर आये

संस्कार मनुजता के सभ्यता ने चर लिए
गांवों को मिटाने के लिए हम शहर आये

क्या-क्या न खोज की, परंतु हाथ क्या लगा
संग्रह की धुन सवार थी, रग-रग बिखर आये

पीड़ा की ज्वलित बत्तियां मन में दबी रहीं
पर चिह्न चाल-ढाल में खुलकर उभर आये

यह कौन हँस दिया कि हृदय झिलमिला उठा
स्वर गंध स्पर्श रस के ज्योति-घन उतर आये

हम तो कुतुबनुमा की सुई एक ही दिशा
जो हिल भी गये, एकदम से फिर इधर आये

कण स्नेह-चरण-धूलि का यदि आंख में लगे
कुछ भी न दिखायी पड़े, सब कुछ नज़र आये



: एक सौ दो

क्या दृष्टि क्रांतिकारी ! कुछ भी न कहीं ख़ामी
उसको कहा 'गधा है' इसको कहा 'हरामी'

घोड़े को न भड़काया, रोड़े भी न अटकाये
किस सादगी से जमकर पहरों लगाम थामी

हर झूठ विकट मोहरा जीते सदा रहेंगे
है नाम इनका हांजी मत है वही प्रणामी

घर-द्वार पुरुष-नारी दरबार-हाट-कूचे
दो वर्ग हैं, बँटे यों — बस काम और कामी

भीतर स्वरूप-दर्शन जिनको, प्रणम्य वे भी
वे धन्य धन्य जिनका भगवान बहिर्यामी

तुम हो सही-सलामत आगे न भूल जाना
व्यक्तित्व जहां जागे दाग़ो वहीं सलामी

पहचान लीजिए अब चौड़े में सब जमा हैं
ग्रामीण सरल नागर नेता प्रबल गिरामी

मारा मुझे भुलाकर अपराध यह बताया
जब आग लग रही थी तूने भरी न हामी

इस वक़्त तो आंखों में सरसों है ढेर फूली
देखे हैं अरे किसने परिणाम दूरगामी

कोई न बताता वह निर्वस्त्र लाश किसकी
नयनों में कृष्ण काजल, है खाल रामनामी

: एक सौ तीन :

कुछ बात तो अवश्य है गाया नहीं यों ही
बाँसों में जगत्प्राण लुभाया नहीं यों ही

जीवों पै, वनस्पति पै, चकोरों पै दृष्टि थी
शंकर ने चंद्र सिर पै चढ़ाया नहीं यों ही

प्राणों में छा गयी है कोई सांस चंदनी
यह जिंदगी का बोझ उठाया नहीं यों ही

पूरा प्रकाश-वृष्टि का विश्वास है नभ को
निशि मोतियों से चौक पुराया नहीं यों ही

बाहें उछाल कूद रहा सिंधु पास ही
नदिया ने ज्वार-भाटा ये पाया नहीं यों ही

उत्तेजना नरम कि तनिक हाथ खुले हैं
सारा शरीर ढँग से छुपाया नहीं यों ही

मेरे बिना निशान किसी का न मिलेगा
मुझको जो बनाया तो बनाया नहीं यों ही

जन्मानुजन्म मूरतें लग-लग के तराशीं
आंसू का मोल हमने चुकाया नहीं यों ही

पापड़ तरह-तरह के हैं बेले यहां-वहां
यह स्वाद विविध रंग का आया नहीं यों ही

एक सौ चार :

कहीं से भी मिला पर था तुम्हारा ही पता यह भी
पहुँचकर भी नहीं पहुँचे रही मन में व्यथा यह भी

कसर क्या यत्न में रक्खी, इधर दौड़े, उधर दौड़े
निरंतर धावमानों को बतानी थी धता यह भी

चले जो, दे दिए ये-वे ठिकाने कुछ पृथक् उनको
लड़े-झगड़े, सही लेकिन न तो वह था, न है यह भी

चुनावों का बृहद् दंगल अजब माहौल बरसाती
अमल जल कर दिया कीचड़, हुई रसमय ख़ता यह भी

किसी को श्रेय क्या इसमें, सभी पौरुष हमारा है
ग़नीमत, स्वल्प पाया तो, न मिलता अन्यथा यह भी

'जगन्मिथ्या' सँदेसा ले, मरे आकर निकट मेरे
कि प्रणयापाय-कातर को सुनानी थी कथा यह भी

एक सौ पांच

कुछ भी समझ लो किंतु है वश में न एक पल
बस उम्र रही बीत कभी आज कभी कल

गजभुक्त पड़ा कैथ चकित देख रहे हैं
आकार यथावत, गया है सार सब निकल

होना न होना एक-सा लगता है सोचिए
रस्सी में ऐंठ तो वहीं यद्यपि चुकी है जल

मुस्कान की खलभल का ज़िक्र और कहीं था
हम देखते ही रह गये भौंहों में पड़े बल

हिंसा की खाद, क्रोध-सलिल द्वेष के अँखुए-
अविलंब बड़े होके गिरायेंगे अग्नि-फल

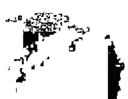
थे नीर भिन्न वर्ण के, आये समुद्र में
स्वयमेव एक हो गये सब अस्ल सब नक़ल

व्यक्तित्व क्या, पवित्र है परिवेश तक जहां
चलते अबाध अनगिने नज़रों के मोरछल

भटका, सुजीर्ण हो मिटा मुश्किल से तब मिला
संकेत-पत्री सूझ को संपूर्ण रंगथल

आंखों में बिठाऊं किसे मैं सिर पै चढ़ाऊं
सोने की मूर्ति मिट्टी के सांचे में गयी ढल

पट्टी में मेरी जो पड़ी वह सीर है दुख की
निश्चिंत हो गया हूं कि होगी न बेदखल



एक सौ छह

इधर मूरख़ा पड़ा ही रह गया बादल कहां आये
किसी बिजली ने उलझाये, किसी महफ़िल ने हथियाए

पवन-आरूढ़ यायावर किधर चल दे भरोसा क्या
उधर जंगल में मंडराये, किसी पर्वत से टकराये

जिन्हें अपना लिया उनको न छोड़ा, सच सभी कुछ है
झपट अँकवार भर ली, फिर पकड़कर कान टहलाये

बराबर मौत से ही जूझना जिसकी नियति, उसको
कहां अवसर कि मुस्काये, कहां फ़ुर्सत कि घबराये

यहां बस देखना ही देखना, सदमा-खुशी किसको
धधकता चाहे बुझ जाये, बुझे को कोई धधकाये

हज़ारों संग, लेकिन कार्य-गौरव दृष्टि में जिसकी
कहो वह उलझे किस-किस से, पुनः किस-किस से कतराये

न खुलकर अंग पसरे ध्यान था अँगड़ाइयों में भी
कहीं इसको न सकुचाये, कहीं उसको न भड़काये

अरे यह गोद किसकी, देखकर ऐसा लगा, इसमें
सिमट जाए, समा जाए, उमड़ बिखरे, कि मर जाए

: एक सौ सात :

परिप्रश्न समाचार कि ख़ूबी प्रसंग की
मेरी भी कथा चल पड़ी बेरंग-ढंग की

मुहताज दाने-दाने को, हैं घास के लाले
बातें न बंद होती हैं घोड़ों की, तंग की

भासित है खंडहर से विलासों का दबदबा
स्वर नृत्य के घुमाव बुलंदी उमंग की

इनमें ही दबी देखता हूं श्रम की जवानी
लगती हैं हथौड़े-सी वे थापें मृदंग की

उड़ता है ठहरता नहीं, संदेश मिले क्या
गर्दन मरोड़ डालिए ऐसे विहंग की

पूरा शरीर लांघ के मन आंख में डूबा
था अंग का प्रभाव कि महिमा अनंग की

हम चंडजव हैं, चाल यह अपनी तो सहज है
अभियोग लगाया गया क्यों शांति भंग की

जलनिधि की आंत खींच के झंझा के सहारे
उठती है, उग्रता न तुम देखो तरंग की

मारा तो ख़ूब चीख़ने लेकिन नहीं दिया
यह रोब या अदा है कि शैली दबंग की

: एक सौ आठ :

औरों की दशा देखिए ख़ुद पर पसीजिए
चौखट पै कल्पना की सिर धुना न कीजिए

खनका दिया इधर तो उधर को नचा दिया
अपने को कामना का खुनखुना न कीजिए

बाना भले ताने में सिमट जाए स्वयं ही
अंबर विचित्र स्वप्न से बुना न कीजिए

कलियां खिलायीं आंख ने मन ने जुलुम सहे
हैं दर्शनीय शूल पर चुना न कीजिए

जुगनूं लगीं, चिनगारियां पकड़ीं कि जल गये
हँस-हँस उछल-उछल के यों भुना न कीजिए

जो वर्त्तमान दुःख वही कौन-सा कम है
आशा व याद से उसे तिगुना न कीजिए

: एक सौ नौ :

भान होता है बड़ी क़ीमती हस्ती हूं मैं
यों बवंडर में पड़ी घूमती पत्ती हूं मैं

तंतु के जाल में है स्नेह की धारा फैली
ज्योति, पाकर जिसे खिलती है, वो बत्ती हूं मैं

मैं परिस्थिति को पचाता वो चबाती मुझको
यह नहीं ज्ञात मुझे पथ्य कि पथ्यी हूं मैं

है चुभन अर्थ नहीं, फिर भी सुई का डोरा
अनुगमन मेरी विवशता है कि नत्थी हूं मैं

जो अवस्था न पंथ जाति से मोही जाती
उस अवस्था में रहे जो वह अवस्थी हूं मैं



: एक सौ दस :

बोलिए न डोलिए कि बचना बचाना है
प्यारी तीव्र ज़िंदगी को गोद में बिठाना है

आग के समुद्र में उठी हैं तुंग ऊर्मियां
पैर रख उन पै सवेग पार पाना है

दृश्य दो हैं, एक ओर जीवन निढाल है
दूसरी तरफ़ बस उँगलियां उठाना है

तेज़ चलें पैर तो क़लम कर देते हो
हिंसा कहां, तेवर तुम्हारा मुंशियाना है

ज्ञान में कमी नहीं कि अच्छी जानकारी है
घूरना कहां है कहां पै दुम हिलाना है

सत्व और तम का विचित्र योग देखिए
काट तुरकाना है, लिबास सूफ़ियाना है

घोर दुविधा में इसी भांति उम्र बीतेगी
आम रास्ता है ये सभी का आना जाना है

अश्रु-हास सुख-दुःख ताल-स्वर-बद्ध हैं
देह क्या है, दिव्य संगीत का घराना है

: एक सौ ग्यारह :

सब वाग्मिता विफल है कि अनजान वहां हैं
आंसू यहां मुखर हैं, बंद कान वहां हैं
पंचांग निचोड़ो न, तनिक व्योम को देखो
वर्षा अकाल प्रीति के समान वहां है
प्रतिघात चीख़ आह ने रूंधे हृदय यहां
भाषण के भभकते हुए तूफ़ान वहां हैं
धन जन अनीति शक्ति की तूती है बोलती
अब हर विचार शास्त्र के विद्वान वहां हैं
ये धूल पसीने की हवा में कराहटें
भोगों के नृत्यशील अनुष्ठान वहां हैं
कंकाल प्रजातंत्र का लिपटा विधान से
अब चीर फाड़ काट के अभियान वहां हैं
रक्खेंगे बाँस ही न, बजेगी क्या बांसुरी
इस तरह सभी मुश्किलें आसान वहां हैं



: एक सौ बारह :

खिलते हैं फूल शूल में, फिर क्या, चुभन अभी सही
सुख ने न दिया प्यार तो दुख का दुलार ही सही

है कुछ न कुछ अवश्य, मगर है गलत कि है सही
है हां अगर तो हां सही, है यदि नहीं, नहीं सही

मैं हूं चकित अवाक् सँजोए असीम राशियां
अस्तित्व तो माना मेरा ईर्ष्यालु निर्दयी सही

पूंजी लुटी बहस नहीं ममता कि थी उदारता
मिलनी हमें भी चाहिए, हां हां, रही-सही सही

विश्वास, देश काल से सटा रगड़ गया घटा
निशि में अचेत हो गया, दिन भर रहा सुधी सही

सुख दुःख की ये उलझनें अजीब धूप छांह-सी
दुख ये-कि है, यहां नहीं ; सुख ये-कि है, कहीं सही

जो कुछ कहासुनी हुई उसको सुधार लें न क्यों
सुनते नहीं कही हुई, अच्छा तो अनकही सही

: एक सौ तेरह :

भीतर भी साँस आती जो बाहर निकलती है
आश्चर्य देखिए कि कैसे मौत टलती है

तितली का गात, गंध भी, तितली के रंग भी
ये फूल हैं कि ज़िंदगी हँसती-मचलती है

आँखों में किसे भर लिया ग़लती तो हो गयी
पर सब तड़पते जिसके लिए ये वह ग़लती है

अहसास तो बाती को भी कुछ हो ही रहा है
कुछ कहते वह चमकती है, कुछ कहते जलती है

रह-रह के याद आयीं जो बीती हुई बातें
जीवन के अंग-अंग में पित्थी उछलती है

• एक सौ चौदह :

आज है युग न तुम-तुम्हीं का, हम-हमीं कहिए
दक्ष नागर उपाधि है, न तिकड़मी कहिए

धूप तो दूर, झुलसती है यहाँ छाया भी
व्यापिनी प्रीति के दम से है कुछ नमी कहिए

तब तो शमशान भी है पूर्ण शांति का माली
यदि न शमशान की लपटों को ऊधमी कहिए

दृष्टि उलझी न सिर्फ़, बस गयी, रची, डूबी
अब तो दुनिया भी वहीं पर रमी थमी कहिए

न कृपा की न सही मौन भला क्यों पूछें
याचना-ताप में क्या रह गयी कमी कहिए

ऐसे बिखरे कि समेटेगा अब नहीं कोई
फ़र्क़ क्या, संयमी कहिए कि दुर्दमी कहिए

सूत ही वस्त्र अदा जिसकी बेल-बूटा है
पेड़ खग पशु उसे कहिए कि आदमी कहिए

: एक सौ पन्द्रह :

मोह जब भंग झगड़ा निपट ही गया न्याय चाहे हमारा तुम्हारा न हो
पैर ठिठके तनिक फिर मुड़े एकदम मेरा पौरुष किसी ने प्रचारा न हो

धड़ मनुज का, उगे सिर धड़ाधड़ जहां भेड़िए बाघ अहि गिद्ध घड़ियाल के
दृश्य यह साफ़ अब क्यों दिखायी पड़ा, क्रांति ने लोकमानस निथारा न हो

दिव्य सौरभ्यमाला पहिन आ रहे शब्द निर्भय चले दमदमाते हुए
चाह व्याकुल जिसे खोजते-खोजते, वह चरण अक्षरों ने पखारा न हो

यह अचानक मिलन एक टकराव था, इसलिए चाल में कुछ लहर पड़ गयी
चक्र अस्तित्व तब तक सँवरता नहीं, चोट जब तक दुबारा-तिबारा न हो

रश्मि की दृष्टि ज्यों ही पड़ी, हर दिशा तम-रहित, झट कमल के अमल दल खिले
पर्त-दर-पर्त स्मृति के उघरने लगे, दोष मेरा हँसी ने बिसारा न हो

आंख से देख लें, कान से सुन सकें, स्पर्श-रस गंध का नित्य सुख मिल सके
संगमों में भटकते फिरें व्यर्थ क्यों, तीर्थ क्या वह जहाँ पंच-धारा न हो

प्रेम-नवनीत-रूषित अगह ज़िंदगी, जंतुओं का विषम व्यूह नाकाम है
खूब गहराइयों में डुबाओ मुझे, शर्त यह है, वहां सिंधु खारा न हो

सत्य, आकार कुछ भी लहर का नहीं, मानता हूं डुबाती उठाती न क्या
नीर-उल्लास की वे तरंगें नहीं हो भंवर सिर्फ़ जिनमें, किनारा न हो

देह मति प्राण मन चेतना प्रेरणा तत्क्रिया भावनायुक्त कौशल-कला
रूप इनका समन्वित बना आदमी, याद रक्खो कि वह पारा-पारा न हो

: एक सौ सोलह :

वही हम तुम, वही उलझन, वही सुलझाव के झगड़े
न है इसमें नया कुछ भी
अलक थी, दृष्टि थी, लावण्यमय मुस्कान थी, यौवन-
चपल उलझा गया कुछ भी
न कहते हैं कि है न उदार घन, पर यह करिश्मा क्यों
खुले मन से उधर रसबिंदु-मुक्ताफल लुटाये, अब
इधर बरसा गया कुछ भी
असल में चाहिए जो चीज निश्चित हो तो मचलें भी
अरे इन वृत्ति-विचलों के मचलने को कहें हम क्या
इन्हें तो भा गया कुछ भी
लगी पूरे शहर में आग क़िस्मत ने किसे छोड़ा
'मगर क्या-क्या गया' जो पूछते, उनको यही उत्तर
"तुम्हें क्या, हां गया कुछ भी"
समझने-सोचने की बांधकर गठरी कहीं रख दी
बचा बस देखना ही देखना ऐसा चमत्कारी
कि वह दिखला गया कुछ भी
रहा वह लगभगाता सुख, प्रकट था धूपछाहींपन
खड़ा यह जगमगाता सुख जो देखा आंख ने तो फिर
नहीं देखा गया कुछ भी

: एक सौ सत्रह :

रक्खो सहेज करके हर पल, न फिसल जाए
साँसों की रगड़ खाकर पूंजी न ये जल जाए
बस एक ध्यान है यह पथ से न पांव विचलें
ऐ मित्र क्षमा ! मेरा व्यवहार जो खल जाए
अलकों के प्रसाधन को उद्यत तो खड़ीं पलकें
डर है विभा का चेतन घूंघर न मसल जाए
उल्लास नर्तनातुर कण-कण पै लोटता है
इस ओर जो टकराये उस ओर उछल जाए
सूरज-तराश-कौशल आ जाए अगर मुझको
कुछ दाह भी छिल जाए, कुछ ज्योति पिघल जाए
माना कि कल्पना में है कौंध एक ग़ज़ब की
पर यत्न करो ऐसा वह लौ में बदल जाए

२ मई, १९८४

: एक सौ अट्ठारह :

भीड़ में खोजें डगर, अड़चन न हो, संभव नहीं
नोचते हों गिद्ध तन, तड़पन न हो, संभव नहीं

चार बर्त्तन व्यस्त हैं टकराव में आश्चर्य क्यों
जो बनी है आज, कल अनबन न हो, संभव नहीं

बाँध दो घुँघरू कि डालो बेड़ियाँ क्या फ़र्क़ है
चित्त उछले, पैर में थिरकन न हो, संभव नहीं

दृश्य जब अन्तःकरण में दीप्त कर गलियाँ घुसे
तब चमकता मन मिलन का क्षण न हो संभव नहीं

प्रेम में क्या वैर, व्यर्थ विवाद है, फिर भी, वहाँ
बाहु-बंधन में फँसी गर्दन न हो संभव नहीं

वस्तु का या लक्ष्य का या रूप-रस का भाव का
व्यक्ति का कोई न कोई धन न हो, संभव नहीं

लेखनी ही दंड, चिन्तापीड, सर ऊँचा किए
जन-प्रबोधन लग्न, कवि निर्धन न हो, संभव नहीं

भोग-संग्रह-स्वर-निनादित उच्च वैभव-सौध में
वासना नाचे विषम, शोषण न हो, संभव नहीं।

कवि - परिचय

डॉ० मोहन अवस्थी का जन्म उत्तर प्रदेश के फर्रुखाबाद जिलान्तर्गत पिपरगाँव नामक ग्राम में विक्रम संवत 1985 को हुआ। पिताश्री का नाम पं० लक्ष्मण प्रसाद अवस्थी तथा माताजी का नाम श्रीमती श्यामलली था। प्रारंभ से ही प्रथम श्रेणी के छात्र। वर्नाक्युलर फाइनल परीक्षा अपने गाँव से, हाईस्कूल परीक्षा गवर्नमेंट हाईस्कूल फ़तेहगढ़ से, इण्टरमीडियट और बी० ए० परीक्षाएँ कानपुर से तथा एम० ए० परीक्षा इलाहाबाद विश्वविद्यालय से न केवल प्रथम श्रेणी में अपितु सर्वोच्च स्थान के साथ स्वर्ण-पदक प्राप्त कर उत्तीर्ण की। वहीं से डी० फिल० एवं डी० लिट्० उपाधियाँ मिलीं। उसी विश्वविद्यालय में पहले हिन्दी प्रवक्ता-रूप में नियुक्त। कालान्तर में उपाचार्य, आचार्य एवं हिन्द-विभागाध्यक्ष पद पर कार्य करके सन् 1989 में सेवा निवृत्त हुए। डॉ० अवस्थी हिन्दी के सुप्रतिष्ठित कवि हैं और अपनी विशिष्ट शैली के कारण उन्होंने अपनी अलग पहचान बनाई है। अनुगीत के प्रवर्त्तन का श्रेय उन्हें है और उन्होंने हिन्दी-कविता को नई अर्थच्छवि तथा भाषा का नया तेवर दिया है।

प्रकाशित ग्रंथ

काव्य : महारथी (सन् 1953), बाल कविता (सन् 1954), देखभाल कर चलो (सन् 1959), अभिशप्त महारथी (सन् 1975), अग्निगंधा (सन् 1982), चाबीदार खिलौने (सन् 1984), एक हमारा देश (सन् 1985), हुआ उजाला (सन् 1993), हलचल के पंख (सन् 1995)।

गद्य : हिन्दी साहित्य का अद्यतन इतिहास (सन् 1970), आधुनिक हिन्दी-काव्य-शिल्प (सन् 1962) हिन्दी रीति कविता और समकालीन उर्दू काव्य (सन् 1978), निराला और 'तुलसीदास' काव्य (सन्1964), समीक्षण और परीक्षण (सन् 1985), देश के गौरव-भाग 1 तथा 2 (सन् 1980)।

संपादित : हिन्दी निबंध की विभिन्न शैलियां (सन् 1969),श्रेष्ठ हिन्दी एकांकी (सन् 1970), उर्दू काव्य-संग्रह (सन् 1969), निबंध-संग्रह (सन् 1980), सूर संग्रह (सन् 1972)।